योगविद्या

वर्ष 15 अंक 2
फरवरी 2026

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट : वसंत पंचमी महोत्सव एवं बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस समारोह, 2026

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

पवित्रता

पवित्रता दो प्रकार की होती है – बाह्य एवं आन्तरिक। स्नानादि से शरीर की शुद्धि, वस्त्र, मकान तथा वातावरण को शुद्ध रखना बाह्य पवित्रता है। बाह्य शुद्धि से विचारों में पवित्रता आती है। बाह्य शुद्धि के फलस्वरूप शरीर के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है। मोह-ममता शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है।

आन्तरिक शुद्धि का अर्थ है, राग-द्वेष रहित होना, उद्देश्यों की पवित्रता तथा भावों की शुचिता रखना। आन्तरिक शुद्धि का महत्त्व बाह्य शुद्धि से अधिक होता है। आन्तरिक शुद्धि से एकाग्रता आती है, और आनन्द, प्रेम, बल, सन्तुलन, गंभीरता, प्रसन्नता, एकरसता, सहिष्णुता एवं उदारता आदि गुण भी प्राप्त हो जाते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

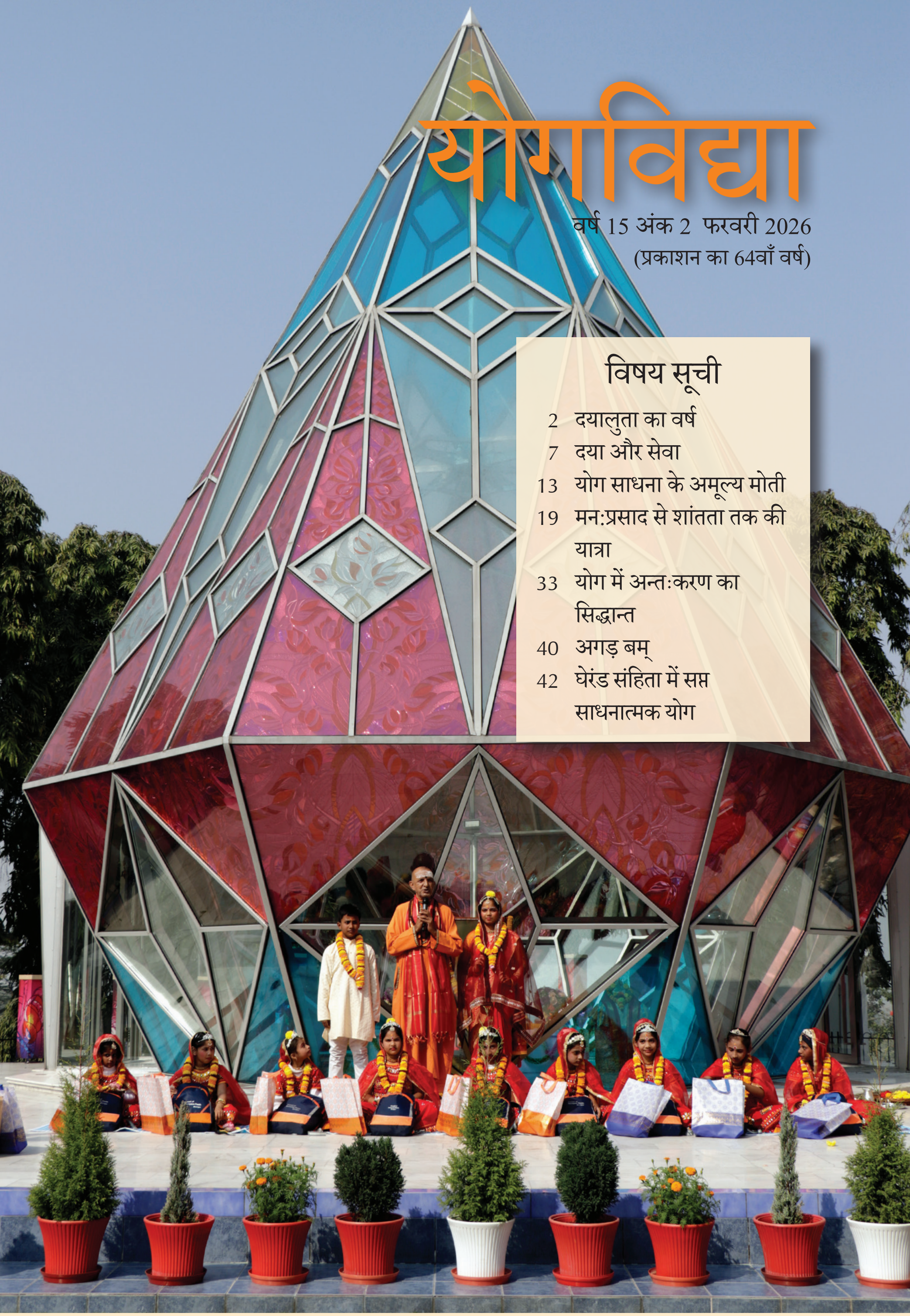

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 2 फरवरी 2026
(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 दयालुता का वर्ष
7 दया और सेवा
13 योग साधना के अमूल्य मोती
19 मन:प्रसाद से शांतता तक की यात्रा
33 योग में अन्तःकरण का सिद्धान्त
40 अगड़ बम्
42 घेरंड संहिता में सप्त साधनात्मक योग

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

दयालुता का वर्ष

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आज वसंत पंचमी के उत्सव का यह प्रथम दिवस है जो बहुत शुभ दिन है। इसे बिहार योग विद्यालय में श्रद्धा, निष्ठा और थोड़े बहुत धूम-धाम के साथ भी मनाया जाता है क्योंकि वसंत पंचमी के दिन ही हमारे गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानंद जी ने बिहार योग विद्यालय की स्थापना इस नगरी में की थी और कालांतर में इस नगरी को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ने योग नगरी के नाम से भी संबोधित किया था।

लोग सोचते हैं कि योग तो साधुओं की चीज़ है, आत्म-साक्षत्कार या ईश्वर-दर्शन की साधना है किंतु ऐसी बात नहीं है। समाज में तो योग को केवल एक शारीरिक क्रिया तक सीमित करके रखा है, लेकिन जो संपूर्ण योग विज्ञान और दर्शन है, वह हमें मानवता से जोड़ने का एक साधन है। आपको याद होगा कि सन् 2023 में जब हमलोग अपने गुरुदेव की जन्म शताब्दी मना रहे थे तब उस वर्ष को हमलोगों ने सेवा-वर्ष घोषित किया था। हमने उस वर्ष को उत्सव के रूप में नहीं, बल्कि एक अवसर के रूप में देखा जहाँ हमलोग समाज में जाकर लोगों की सेवा कर सकें।

इसी प्रकार, सन् 2024 में हमलोगों ने अपने परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी के संन्यास की शताब्दी मनायी थी और उस वर्ष को हमलोगों ने सकारात्मक संबंध का वर्ष घोषित किया था। स्वामी शिवानंद जी का यही संदेश था कि हर मनुष्य के साथ एक अच्छा, सकारात्मक संबंध बनाकर रहना चाहिये, क्योंकि जब सकारात्मक संबंध रहता है तब मन शांत रहता है और समाज में भी सुरक्षा और शांति रहती है। यह तो एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। आजकल घरों में, गाँवों में, नगरों में संघर्ष होता है जो यही दर्शाता है कि हमलोग सकारात्मक संबंध से काफी दूर चले गये हैं। अगर सकारात्मक संबंध होता तो न घर में कलह की संभावना है, न पड़ोसियों के साथ कलह की संभावना है, न ही समाज, राष्ट्र और विश्व में कलह की संभावना है। सकारात्मक संबंध को हमलोगों ने दो वर्षों तक लोगों में प्रसारित किया। यह मात्र एक विचारधारा या दर्शन नहीं है, बल्कि अपने भीतर के सद्भाव से जुड़ने की, लोगों में सद्भाव का जागरण करने की एक कला है।

अब हमलोगों ने दयालुता को अपना संकल्प बनाया है और इस वर्ष को 'दयालुता का वर्ष' यानी 'year of kindness' घोषित किया है। सकारात्मक संबंध के बाद दयालुता अगला चरण है। इसका अर्थ क्या होता है? दयालुता का अर्थ होता है, लोगों के प्रति सहानुभूति रखना, लोगों को मदद करने के लिये तैयार रहना और दूसरों के दु:खों को कम करने का प्रयास करना। दयालुता के अंतर्गत ये तीन चीज़ें आती हैं जो हमारी भारतीय परंपरा के सद्गुणों के खान के तीन हीरे हैं। दयालुता तभी संभव होती है जब मनुष्य भेद-भाव का त्याग करके दूसरों में ईश्वरीय अस्तित्व का दर्शन करे, जिसे हमारे गुरुदेव आत्मभाव कहते हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं – *ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*, अर्थात् मेरा ही अंश जीवलोक में जाता है और इस शरीर के भीतर प्रकट होता है।

एक व्यक्ति ने हमसे कभी पूछा था कि परमात्मा, आत्मा और जीवात्मा में क्या अंतर है। जल के किसी विशाल भंडार, जैसे सागर या नदी का उदाहरण लो। उस नदी से तुम एक बड़ा मटका पानी लेकर अपने घर में लाते हो। मटके में जो पानी है वह उस नदी का अंश हुआ। उस मटके को तुम घर में रखते हो और पचास लोग उससे गिलास में पानी पीते हैं। जो पानी घड़े में था, अब उसको पचास लोग ग्रहण कर रहे हैं। अगर नदी को परमात्मा मानते हो तो नदी से तुम जो घड़े में जल उठाकर लाये हो उसको आत्मा मानो और

गिलास में जो पानी निकालकर दूसरों को पिलाते हो उसको जीवात्मा मानो। नाम कुछ भी दो, तत्त्व तो एक ही है। नदी में भी वही तत्त्व है, घड़े में भी वही तत्त्व है, गिलास में भी वही तत्त्व है। उस ईश्वरीय तत्त्व की अनुभूति तब होती है जब तुम अपने भीतर झांकते हो और अपने भीतर झांकने की कला को ही योग कहते हैं।

हमलोग अपने भीतर कभी नहीं झांकते हैं, हमेशा बाहर में क्या हो रहा है उसके प्रति ज्यादा सजग होते हैं। हमारे भीतर क्या हो रहा है, उसको हम जान नहीं पाते हैं। मन तो ऊपरी सतह है। तुम्हारे भीतर जो हो रहा है वह एक समुद्र की भांति है, और जो ऊपरी सतह दिखलायी देती है वह तुम्हारा मन है। सतह पर जो छोटी-बड़ी तरंगें उत्पन्न होती हैं वे विचार और वृत्तियाँ हैं, लेकिन इन सब के परे अगर तुम गहराई में जाओगे तो वहाँ पर तुमको उसी ईश्वरीय तत्त्व की अनुभूति होगी। इसीलिए हमारे गुरुदेव कहते थे कि अगर तुम अपने आप को सद्भावना, सेवा और दयालुता से जोड़ोगे तो तुम अपने भीतर झांक सकते हो और उस ईश्वरीय तत्त्व को देख सकते हो।

वसंत पंचमी पर एक अवसर मिला है कि हम दयालुता के इस वर्ष में अपने हृदय और मन को थोड़ा खोलकर एक निष्काम वातावरण में जप करके जीवन में सौंदर्य की स्थापना करें। सौंदर्य का मतलब होता है मन की कलुषता का कम होना। मन की कलुषता क्या है? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, छल-कपट और स्वार्थ जैसे दुर्गुण कलुषता हैं, दूसरों को परेशान करना कलुषता है, घर-परिवार-समाज से अपने आप को दूर करना कलुषता है। ईश्वर ने इस कलुषता के लिये हमको इस संसार में नहीं भेजा है। ईश्वर ने हमको इस संसार में क्यों भेजा है? आप स्कूल क्यों जाते हो? स्कूल पास करने के लिये जाते हो न? पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी – हर कक्षा को पास करते जाते हो और जो पास नहीं कर पाते हैं वे एक ही कक्षा में अनेकों वर्षों तक पड़े रहते हैं। जिसका मन और हृदय बंद है वह इस संसार में आकर भी अपने आप को उठाने का प्रयत्न नहीं करता है, लेकिन जो चालाक और चतुर है, वह इस संसार की पढ़ाई को पूरा करके अगली कक्षा में जाना चाहता है।

ऐसे वातावरण में आकर जब हम अपने हृदय के द्वारों को खोलते हैं, ईश्वर का आवाहन मंत्रों के द्वारा करते हैं तो उनका आभास होता है। शुरू में भले ही मेरी ईश्वर-दर्शन की नहीं, सुख की कामना हो, तो इसलिये पहले सुख की प्राप्ति हो। शांति की कामना है, शांति की प्राप्ति हो। बाधाओं को हटाने की कामना

है, बाधाएँ हट जायें। इतना हो जाये तो मन खुलता है। ये बाधाएँ बाहर से नहीं, अपने भीतर से ही प्रकट होती हैं। एक रास्ता है, उस पर लोग गाड़ी चलाते हैं, लोगों का एक्सीडेंट भी होता है, लेकिन एक्सीडेंट क्यों हुआ? सजगता में कमी या गाड़ी के खराब होने के कारण एक्सीडेंट होते हैं। एक्सीडेंट का दोष रास्ते का नहीं, चालक या गाड़ी का होता है। इसी तरह जीवन में बाधाएँ नहीं, हममें बाधाएँ और दोष हैं। इसीलिये आदि शंकराचार्य जी कहते हैं – *पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्* – बार-बार हमारा जन्म होता है, बार-बार हम मरते हैं और बार-बार हम माता के गर्भ में आते हैं। यहाँ वे बार-बार इसलिए कह रहे हैं कि हम अपने मोह, लोभ, लालच, घृणा, द्वेष, आसक्ति, मद, मात्सर्य और स्वार्थ के कारण एक ही क्लास में फँसे हैं।

जब तक इस शरीर में हो, यह सब तो अनुभव करते ही हो, लेकिन एक प्रयास भी होना है कि हम अपने जीवन में किसी अच्छी चीज़ का भी अनुभव कर सकें। केवल संघर्ष नहीं, कुछ उपलब्धि भी होनी है। केवल तनाव और चिंता नहीं, शांति भी होनी है। केवल अभाव नहीं, कुछ प्राप्ति भी होनी है। कुछ प्राप्त करने के लिये मनुष्य को परिश्रम तो करना ही पड़ेगा। हमलोग सोचते हैं कि प्राप्त करना केवल एक भौतिक कर्म है। नहीं, वह जीवन की साधना है, और प्राप्ति केवल बाहर से नहीं होती। आखिर बाहर से आप क्या प्राप्त करोगे? मकान बना लोगे, शादी करवा दोगे, थोड़ी धन-संपत्ति कमा लोगे, नया कपड़ा पहन लोगे या नयी गाड़ी खरीद लोगे, उतना ही तो प्राप्त करोगे न? उससे ज़्यादा क्या होगा? क्या आपने मन की शांति को प्राप्त किया है? क्या सद्गुणों से अपने आप को जोड़ा है? वह सब तो नहीं हुआ है फिर क्या प्राप्त किया है? केवल अपना कमरा कपड़ों से भर लिया है कि यह नया फैशन है। अरे! नया फैशन तो मन का भी होता है। सद्गुण नये फैशन होते हैं जीवन के, उनको भी तो पाने का थोड़ा प्रयास करना चाहिये!

बहुत-से लोग जो योग के मार्ग में आते हैं, वे आगे बढ़ नहीं पाते हैं क्योंकि मन उनका बंद है। भले ही वे आश्रम में पचास साल रह जायें, पर मन बंद ही रहेगा। ऐसे में क्या प्राप्ति है? हमारे गुरुदेव कहते थे कि पेशाब को एक बोतल में बंद करके गंगा जी में हज़ार वर्षों के लिये डाल दो, क्या वह शुद्ध होगा? हज़ार वर्षों के बाद जब तुम बोतल को निकालकर खोलोगे तो पेशाब की ही बदबू तुमको आयेगी क्योंकि ढक्कन बंद था।

भगवान ने इतना सुंदर संसार बनाया है, लेकिन उसमें हम अपने ढक्कन को बंद करके बैठे हैं। इसीलिये हमारी भारतीय परंपरा में आश्रमों में जाकर लोग यह शिक्षा प्राप्त करते हैं कि बंद बोतल को कैसे खोलें। उसका एक उपाय है योग और ध्यान का मार्ग। अपने भावों को बदलना, यह भी एक उत्तम मार्ग है। पचास साल तक लोग ध्यान करते हैं, पर भाव नहीं बदल पाते हैं। लेकिन जो भाव बदल लेता है उसको संभवत: एक क्षण में ही दिव्य अनुभूति हो सकती है। इसलिये इस वर्ष को हम लोगों ने दयालुता का वर्ष घोषित किया है। इस दिशा में इस साल थोड़ा प्रयास जरूर करना। यही हमलोगों के जीवन की साधना होगी, और यही वास्तव में योग है, यही धर्म है।

– 19 जनवरी 2026, वसंत पंचमी महोत्सव, गंगा दर्शन

दया और सेवा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सेवा का प्रयोजन क्या है? आखिर तुम दीन-दरिद्र-पीड़ित मानवता की सेवा, समाज और देश की सेवा किसलिए करते हो? इसलिए कि सेवा द्वारा तुम्हारा हृदय शुद्ध होता है। अहंकार, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता की भावना और इस प्रकार की सारी कुत्सित भावनाओं का नाश होता है तथा नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और दया जैसे गुणों का विकास होता है। सेवा से स्वार्थ-भावना मिटती है। द्वैत-भावना क्षीण होती है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण विशाल और उदार बनता है। एकता का भान होने लगता है। परिणामस्वरूप आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने लगता है। एक में सब और सबमें एक की अनुभूति होने लगती है। तभी असीम सुख प्राप्त होता है। आखिर समाज क्या है? अलग-अलग व्यक्तियों या ईकाइयों का समूह ही तो है। विश्व ईश्वर का ही व्यक्त रूप है। सेवा ही ईश्वर की पूजा है। लेकिन सेवा में भाव चाहिए, तभी हृदय-शुद्धि और त्वरित साक्षात्कार सम्भव है।

भेद की भावना घातक होती है; अत: उसे मिटा देना चाहिए। उसे मिटाने के लिए ब्रह्म-भावना, चैतन्य की अद्वैतता का विकास और नि:स्वार्थ सेवा की आवश्यकता है। भेद-भावना अज्ञान या माया द्वारा रचित एक भ्रम-मात्र है।

अहैतुक और नि:स्वार्थ सेवा के प्रति तीव्र उत्साह का विकास करना चाहिए। सबके प्रति दया-भाव रखो, सबसे प्रेम करो, सबकी सेवा करो, सबके प्रति उदार बनो, सहिष्णु रहो। सबमें ईश्वर की सेवा करो। यही लक्ष्य-प्राप्ति का मार्ग है। जिस प्रकार किसी माता के नौ बच्चे मर जाएँ, सिर्फ एक बचा रहे, तो वह माता उस एक बच्चे का बहुत ध्यान रखती है, उसी प्रकार, हमें भी प्राणी-मात्र के प्रति असीम प्रेम रखना होगा। साधक के लिए आवश्यक प्रथम और प्रमुख गुण यही है। जो इस असीम प्रेम से सम्पन्न होगा, उसका दिव्य शरीर अद्भुत तेज से चमकेगा और अवर्णनीय कान्ति से दीप्त होगा।

जो मनुष्य सदा अपने सुख और सुविधाओं को भुलाकर दूसरों की सहायता करने का ही प्रयत्न करता है, वही वास्तव में आध्यात्मिक मार्ग का योग्य साधक है। आत्मानन्द के साम्राज्य का द्वार खोलने की कुंजी उसके हाथ लग जाती है।

कर्म के प्रति सही दृष्टिकोण

आजकल के नये साधक कोई सुगम कार्य करना पसन्द करते हैं, जैसे लिखना, पूजा के लिए फूल चुनना, पुस्तकालय में पुस्तक सजाना, टाइप करना, किसी काम का निरीक्षण या प्रबन्ध करना, आदि। पानी भरना, लकड़ी चीरना, रसोई के बर्तन साफ करना, कपड़े धोना, झाड़ना, खाना पकाना, शौचालय साफ करना और रोगियों की सेवा जैसे काम उन्हें पसन्द नहीं आते। उन्हें ये काम नीच मालूम होते हैं। उन्होंने कर्मयोग और वेदान्त को सही मायने में समझने का प्रयत्न नहीं किया है। अभी वे बाबू ही हैं। उन्हें कठोर अनुशासन और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। मैं ऐसे बाबू-साधकों को हमेशा एक वर्ष थाली-बर्तन माँजने में, और एक वर्ष तक रोगियों का कमरा झाड़ने-बुहारने एवं कपड़े धोने में लगाता हूँ। तभी वे वास्तविक साधक बनते हैं और तभी उनमें ध्यान प्रारम्भ करने की योग्यता आती है।

आश्रमों का प्रबन्ध यदि ढंग से नहीं किया गया तो वहाँ का रसोईघर लड़ाई-झगड़े का अखाड़ा बन जाता है। सारी माया रसोई घर में ही है। साधक

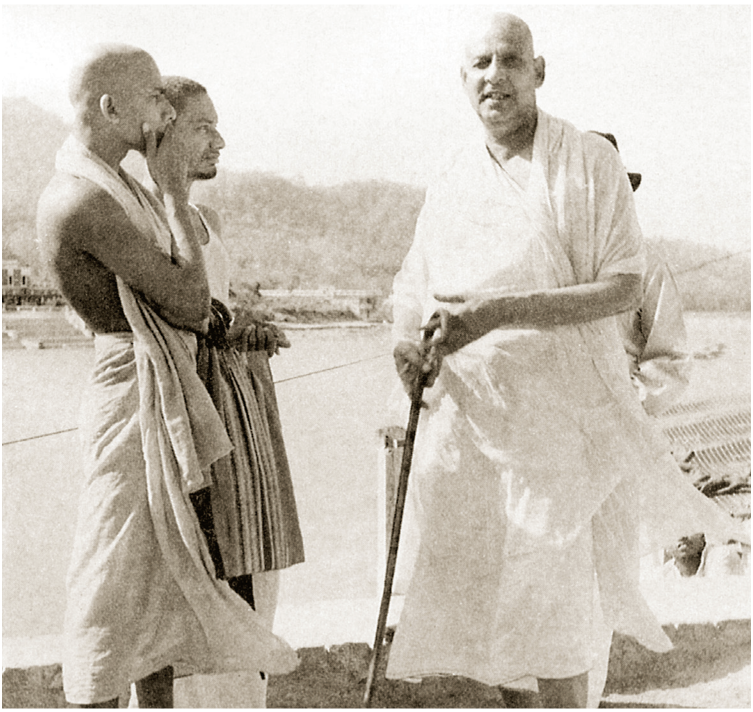

वहाँ लड़ने लगते हैं। एक कहता है, 'मुझे आज घी या साग नहीं मिला।' दूसरा कहता है, 'दाल में पानी अधिक है।' तीसरा साधक कहता है, 'अमुक बहुत सारी चीनी खा गया, आज दूध के लिए चीनी बची ही नहीं।' यदि नये साधकों का शिक्षक सच्चा कर्मयोगी है तो आश्रमों के रसोई घर से ही अद्वैत वेदान्त का पाठ आरम्भ होता है और हिमालय पर्वत की वशिष्ठ-गुफा में समाप्त होता है। सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, सामंजस्य, सच्ची सेवा-भावना आदि गुणों को विकसित करने, चित्त को शुद्ध करने और जीव-मात्र की एकता का अनुभव करने के लिए रसोई घर एक उत्कृष्ट विद्यालय है। प्रत्येक साधक को अच्छी तरह रसोई बनाना सीखना चाहिए।

साधक यदि गुरु के साथ रहता है, तो जो भी काम दिया जाए, उसे रुचि के साथ करने को तैयार रहना चाहिए। जिस काम को देखकर मन भागता हो, उसके प्रति यदि रुचि पैदा की जाए, तो कोई भी काम करने की इच्छा सहज होने लगेगी और इस प्रकार साधक का मनोबल निश्चित ही विकसित होगा।

मन का सन्तुलन बनाए रखने से मनुष्य वास्तविक नित्य-सुख प्राप्त करता है। यह सुख बाजार से खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है। यह ऐसी वस्तु है, जो आत्म-भाव से, समदृष्टि के साथ संयत इन्द्रियों से, आत्म-निग्रह-पूर्वक की गयी नि:स्वार्थ और सतत् सेवा से तथा निरहंकारिता, विशालता, उदार सहिष्णुता, उच्च कोटि के धैर्य, करुणा, शान्ति, उद्वेग का नियन्त्रण आदि गुणों का विकास करने से और इसी प्रकार कामनाओं, चिन्ताओं, भय और उदासी को ध्यान और आध्यात्मिक साधना के द्वारा दूर करने से प्राप्त की जा सकती है। मन की शान्ति और सन्तुलन ही मनुष्य को शाश्वत सुख प्रदान कर सकते हैं। जिस महापुरुष ने यह शान्ति और समाधान प्राप्त कर लिया है, वह जिस सुख का अनुभव करता है, उसके सामने तीनों लोकों का वैभव भी अति तुच्छ सिद्ध होगा। ईमानदारी से सोचें कि आखिर आनन्द कहाँ है? कौन बड़ा आदमी है? क्या यह आनन्द उस वैभव-सम्पन्न राजा के पास है, जिसका मन राजमहल में रहकर भी चंचल और असन्तुलित है, या उस गरीब साधु के पास है, जिसका मन शान्त, तेजोमय और सन्तुलित है तथा जो गंगा माता के पवित्र तट पर एक घास की झोपड़ी में वास कर रहा है?

हम यदि किसी की सेवा करना चाहते हैं, तो हर तरह से उसे प्रसन्न करना होगा। ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे वह अप्रसन्न हो। ऐसा ही काम करना होगा जिससे उस व्यक्ति को अतीव सुख मिले। सच्ची सेवा इसी

प्रकार होती है। लेकिन सामान्यतया लोग सेवा का ढोंग रचते हुए खुद को ही सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यह बड़ी भूल है। किसी को तेज धार वाला छुरा देना हो, तो जो व्यक्ति तेज धार अपने हाथों में लेकर मूठ दूसरे को पकड़ाता है, वही सच्चा सेवक है। सच्चा सेवक दु:ख भोगने से सुख पाता है। वह अपने कन्धों पर ऐसे काम का भार ले लेता है, जो बहुत उत्तरदायित्वपूर्ण है, कठिन है और जिसमें बहुतों की अरुचि रहती है। दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए वह स्वयं अपने को मिटा देता है। दूसरों की सेवा करने और उन्हें खुश करने के लिए स्वेच्छा से दु:ख और कष्ट भोगने लगता है।

करुणा और प्रेम

दो-दो घण्टे तक कुम्भक क्रिया द्वारा श्वास रोक लेना, चौबीसों घण्टे प्रार्थना रटते रहना, खाना-पीना छोड़कर तहखाने के अन्दर चालीस दिन तक समाधि लगाना, खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुए जीभ काट लेना, ग्रीष्म ऋतु की चिलकती धूप में एक पैर पर खड़े रहना, ठीक मध्याह्न के समय सूर्य पर त्राटक करना, किसी निर्जन और नीरव वन में ॐ ॐ ॐ का जप करना, संकीर्तन करते समय अश्रुधारा बहाना – ये सब तब तक निरर्थक हैं जब तक कि इनके साथ व्यक्ति में प्रत्येक प्राणी के अन्दर स्थित ईश्वर के प्रति ज्वलन्त प्रेम न उमड़े और प्राणीमात्र में ईश्वर की सेवा करने की भावना जागृत न हो। खेद का विषय है कि आजकल के साधकों में ये दो अपरिहार्य गुण बिल्कुल नहीं होते और यही कारण है कि वे एकान्तवास करते हुए भी ध्यान-मार्ग में विशेष प्रगति नहीं कर पाते हैं। प्रारम्भ में प्रेम और सेवा के निरन्तर अभ्यास के द्वारा उन्होंने अपने अन्त:करण को तैयार नहीं किया है।

मैंने अपने जीवन-काल में ऐसे अनेक भक्त देखे हैं, जो अपने गले और कलाइयों में कई जप-मालाएँ पहने रहते हैं और हाथ में एक लम्बी माला लेकर दिन-रात 'हरे राम हरे कृष्ण' का जप करते रहते हैं। ये भक्त कभी किसी रोगी के पास नहीं जाते हैं। वह मर रहा हो, तो उसे कुछ दूध या पानी भी नहीं देते हैं और पूछते भी नहीं कि 'क्यों भाई, क्या चाहिए? मैं कुछ सेवा करूँ?' रास्ते में कोई दिख जाए तो कौतूहलवश दूर खड़े देखते रहते हैं। क्या इन्हें सच्चा वैष्णव या भक्त कहा जा सकता है? क्या इनके भजन और ध्यान से रंच-मात्र भी वास्तविक लाभ होने वाला है? एक जीवित नारायण सामने मरने की हालत में है, उसका जीवन डाँवाडोल है, तब भी इन भक्तों के हृदय

में उनकी सेवा करने या उनसे दो मीठी बातें करने तक की इच्छा नहीं होती। ऐसे कठोर-चित्त होकर उस करुणासागर हरि के दर्शन की अपेक्षा ये कैसे कर सकते हैं? ये उस ईश्वर का साक्षात्कार करने की आशा कैसे कर सकते हैं, जबकि प्रत्येक प्राणी में उनका दर्शन करने योग्य उनकी आँखें ही नहीं हैं और सभी रूपों में उस ईश्वर की सेवा कर सकने की भावना ही नहीं है?

ईश्वर समर्पित कर्म

जिस व्यक्ति में ज्ञान और भक्ति है, वही वास्तव में देश और जनता की पूरी सेवा कर सकता है। ज्ञान और भक्ति ही कर्मयोग की आधारशिला होनी चाहिए। प्रारम्भ में कर्मयोग के साथ ज्ञान या भक्ति-योग को मिलाने से बहुत लाभ होता है। ज्ञान-कर्मयोगी अनुभव करता है कि वह अपनी आत्मा की ही सेवा कर रहा है और उसे अद्वैतानुभूति होती है। भक्ति-कर्मयोगी सोचता और अनुभव करता है कि वह सबमें इष्टदेव की ही पूजा कर रहा है और उसे ईश्वरानुभूति होती है तथा अपने प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं। बिना ज्ञान और भक्ति के केवल दयावश कुछ भीख आदि देना साधारण सामाजिक कार्यों से अधिक कुछ नहीं है। वह न तो योग है, न पूजा। वह साधारण स्तर का कर्म है जिससे मनुष्य की बहुत उन्नति नहीं हो सकती। उसे यदि प्रगति कहते हो तो भी वह अत्यन्त धीमी और मूढ़ प्रगति है। याद रखो, मनोवृत्ति या भाव ही कल्याणकारक होता है।

जो कर्मयोगी प्रारम्भ में सारे काम ईश्वर की पूजा के रूप में करता है, अपना शरीर, मन और सभी क्रियाएँ उस ईश्वर के चरण-कमलों में फूल की तरह समर्पित करता है, वह सतत् चिन्तन के द्वारा ईश्वरमय हो जाता है और पूर्ण समर्पण के द्वारा ईश्वर में लीन हो जाता है। वह ईश्वर से एकरूप हो जाता है। उसकी इच्छाएँ ब्रह्माण्डीय इच्छाओं से मिल जाती हैं। यह उसकी अन्तिम और समुन्नत स्थिति है। वह इस बात का अनुभव करेगा कि संसार में जो-कुछ हो रहा है, सब ईश्वर की लीला के सिवाय कुछ नहीं है। ब्रह्मसूत्र के *लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्* वाक्य की सत्यता का वह अनुभव करता है। उसे ऐसा भान होगा कि वह ईश्वर के साथ एक हो गया है और उसकी लीला में वह भी सहभागी है। वह ईश्वर के लिए ही जीता है। अब उसके विचार और काम ईश्वर के ही विचार और काम हो जाते हैं। पर्दा उठ जाता है। भेदभाव पूर्णतया मिट जाता है। अब वह दिव्य ऐश्वर्य का सुख भोगने लगता है।

अस्पताल में काम करने वाले डॉक्टर को यह भावना रखनी चाहिए कि रोगियों के रूप में ईश्वर ही प्रकट हुआ है। उसे समझना चाहिए कि यह शरीर ईश्वर का चलता-फिरता मन्दिर है और यह अस्पताल वृन्दावन या अयोध्या है। उसे सोचना चाहिए कि 'मैं जो कुछ कर रहा हूँ, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए कर रहा हूँ, ऊपर के अधिकारियों को खुश करने के लिए नहीं।' उसे समझना चाहिए कि ईश्वर अन्तर्यामी है। वही पीछे से सभी का संचालन करता है और इस शरीर का सूत्रधार वही है। उसे सोचना चाहिए कि वह अपना सारा काम ईश्वर की इच्छा से ही कर रहा है, जिसकी विराट् योजना है। उसे अपने सारे अच्छे-बुरे काम ईश्वर के चरणों में समर्पित करने चाहिए और कहना चाहिए, *ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु*। यह क्रम रोज रात को सोने से पहले चलना चाहिए। यही वह ज्ञानाग्नि है, भक्ति की अग्नि है, जो सारे कर्मों का फल समाप्त करती, चित्त-शुद्धि लाती, आत्मज्ञान दिलाती और परम गति प्राप्त कराती है। इस प्रकार का अभ्यास सतत् करते रहने पर क्रमशः अपने काम के प्रति मन अनासक्त होता जाएगा। महिलाओं को घर का काम करते समय प्रतिदिन इसी प्रकार की भावना का अभ्यास करना चाहिये। इस ढंग से सारे कर्म आध्यात्मिक बनते हैं। सारे कर्म ईश्वर की उपासना बन जाते हैं। इस सही मनोवृत्ति से काम करते रहने पर मनुष्य अपने जीवन में चाहे जिस परिस्थिति में भी हो, ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव कर सकता है।

योग साधना के अमूल्य मोती

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आप योग करो या न करो, लेकिन आज योग के कारण हम सब लोग मिल रहे हैं। इस कार्यक्रम का प्रारंभ हम कीर्तन से करेंगे, इसमें आप सब सहयोग करें। कीर्तन क्या है? यह हमारी अपनी भावना है। मैं कौन हूँ? हम अपना नाम भूल जाते हैं, तो याद दिलाना पड़ता है –

शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं
वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ...

भिलाई में योग का बीजारोपण सन् 1956 में हुआ। योग का बीज कितना मजबूत है! खत्म नहीं हुआ, बल्कि बरगद और पीपल के वृक्ष की तरह धीरे-धीरे बढ़ता रहा। अब मैं समझता हूँ कि भिलाई स्टील प्लांट में योग का वृक्ष जम गया है। एक बार जम गया, तो जम गया, निकलने वाला नहीं है। यह कंक्रीट भी नहीं, स्टीलक्रीट है, यहाँ योग तो जमेगा ही।

योग को आप लोगों ने चारों तरफ से लोहे के बाड़े से घेर कर, संभाल कर रखा है ताकि वह टूटे नहीं, नष्ट नहीं हो। अभी इक्कीसवाँ साल चल रहा है। चार साल के बाद सन् 1981 में पचीस साल पूरे हो जायेंगे। मेरी सलाह है कि यहाँ भिलाई में आप लोगों को योग की रजत-जयन्ती मनानी चाहिए।

आप लोग कहेंगे कि यह तो पाँच साल बाद की बात है, आप अभी से क्यों सोच रहे हैं। आँख बंद की, देखते-ही-देखते पाँच साल तुरन्त निकल जाते हैं। उस समय तक आपको मालूम नहीं कि हिन्दुस्तान में योग का क्या स्वरूप होगा। इसके बारे में आपको अभी से सोचना चाहिए। भिलाई स्टील प्लांट में योग की रजत-जयन्ती, यह आपका अगला कदम है।

आप लोग इस रजत-जयन्ती को मनाने में भले असफल हों, पर हम तो अवश्य मनायेंगे। भगवान ने हमें सम्पत्ति नहीं दी है, मगर ऐश्वर्य बहुत दिया है। मेरे पास जो बाप की पुश्तैनी सम्पत्ति थी, वह सब कुछ छूट गयी। केवल दो धोती, दो रोटी, बस। एक जमाने में चिलम पीते थे, वह भी छूट गयी। अब हम केवल ऐश्वर्य को रखने वाले हैं, और उसी के भोक्ता हैं। हम निश्चित रूप से इस कार्य को करेंगे।

एक मंच पर आकर हमारे देश के विद्वानों, डॉक्टरों और महात्माओं को अपना निर्णय देना होगा। योग गलत है या सही, इसके बारे में लोगों को प्रमाण के साथ बोलना होगा; आपके निर्णय को जनता सुनेगी। योग की रजत-जयन्ती के सिलसिले में भिलाई को एक ऐसा काम करने का अवसर मिलेगा, जो भारत में नहीं हो पाया है। भारत में शोध करने वाले अनेक त्यागी लोगों को, विद्वानों, महात्माओं एवं अनुसंधानकर्त्ताओं को इस रजत-जयन्ती के द्वारा एक मंच पर लाना चाहिए। अपनी खोज के सिलसिले में उन्होंने क्या पाया? उनका निर्णय और निष्कर्ष क्या है, जनता को इसे जानना चाहिए।

आज का आदमी योग की महत्ता और उपयोगिता को पहले की अपेक्षा ज्यादा समझने लगा है। धीरे-धीरे योग को समाज-निर्माण में आवश्यक तत्त्व के रूप में लेना होगा। इसे शिक्षा के साथ जोड़ना होगा। यह दुर्भाग्य की बात है कि दुनिया के अन्य देशों की अपेक्षा हमारा देश योग के मामले में बहुत पिछड़ा हुआ है। योग तो यहाँ की धरोहर है, परन्तु बाहरी धर्मों और समाजों ने इसे अख्तियार कर लिया है। आज ऐसे राष्ट्रों और जातियों के लोग भी, जो किसी धर्म को नहीं मानते, बहुत खोज और जाँच के बाद योग को श्रद्धा और विश्वास के साथ अपनाते जा रहे हैं।

योग के क्षेत्र में हिन्दुस्तान ने जितनी प्रगति की है, उसकी तुलना में दुनिया के अन्य देश बहुत आगे बढ़ गये हैं। हमारा भारतवर्ष कम-से-कम एक सौ साल

पिछड़ा हुआ है। इसमें आपको बुरा नहीं मानना चाहिए। मैं प्रमाण के साथ बोलता हूँ। हम टेक्नोलॉजी में तो निश्चित रूप से पीछे हैं। योग के सम्बन्ध में दुनिया के अन्य देशों के लोगों में विश्वास बढ़ता जा रहा है, उनमें श्रद्धा जाग्रत हो रही है और वे इस सम्बन्ध में खोज कर रहे हैं। योग साधना के जो अमूल्य मोती दबे पड़े हैं, उनकी खोज में हम लोग बहुत पीछे हैं।

मैं यह नहीं कह सकता कि हम लोग इसके लायक नहीं हैं; हमारे देश में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, कुछ ऐसी सामाजिक और ऐतिहासिक घटनाएँ हमारे सामने से गुजर चुकी हैं कि अपनी संस्कृति के प्रति हमारा आत्मविश्वास खत्म-सा हो चुका है। प्रत्येक जाति का एक गौरव होता है। प्रत्येक परिवार की एक शान होती है। प्रत्येक राष्ट्र की एक धरोहर होती है। जब वह परिवार और राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक पूँजी को नहीं समझ सकता और अपने पूर्वजों की विरासत की उपेक्षा करता है, तब उसका नैतिक पतन होने लगता है। शायद हमलोग इसी दौर से गुजर रहे हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि इन पंक्तियों को सुनने के बाद हम सबका रास्ता बदलेगा। योग भारतीय संस्कृति का गौरव और पूर्वजों की विरासत है, इसकी उपेक्षा करने से नैतिक पतन हो गया है।

योग में जो अनुसंधान हो चुके हैं, हो रहे हैं और होने वाले हैं, उनको यदि इस सम्मेलन में गिना जाय, तो यह सम्मेलन कई सालों तक चल सकता है। दुनिया के कोने-कोने में बैठे हुए वैज्ञानिक इस बात पर विचार कर रहे हैं कि योग के अभ्यासों में वह कौन-सी ताकत है, जो न केवल शरीर की बीमारियों को दूर करती है, बल्कि मनुष्य के व्यक्तित्व की गहराइयों में जाकर उसकी चेतना को भी प्रभावित करती है। आधुनिक मनोविज्ञान के पास इसका उत्तर नहीं है, लेकिन योग के पास है। योग ने एक-एक कर विज्ञान की चुनौतियों, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की चुनौतियों को स्वीकार किया है।

योग के क्षेत्र में दुनिया में बड़ा जबरदस्त काम हो रहा है, जिसे आप सुनेंगे तो दंग रह जायेंगे। पश्चिमी सभ्यता एक यांत्रिकी सभ्यता है, जिसने तकनीकी ज्ञान के आधार पर आधुनिक समय में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। वहाँ सम्पत्ति और वैभव की प्रचुरता है। उनसे हमारे देश की तुलना नहीं की जा सकती। लेकिन वहाँ के लोग आज एक चीज को महसूस करने लगे हैं।

पश्चिम में एक ऐसा वर्ग पैदा हो रहा है, जो आधुनिक सभ्यता से उसी प्रकार डरता है, जिस प्रकार आदमी कैंसर या मृत्यु से डरता है। मैं यह नहीं कहता कि आधुनिक सभ्यता खराब है। आधुनिक सभ्यता में पले हुए लोग जिस

तरह मानसिक तनाव का अनुभव कर रहे हैं या जैसी बीमारियों का अनुभव कर रहे हैं, अगर हम आपको उन सबकी जानकारी दें, तो आप आश्चर्यचकित रह जायेंगे। बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिकों, जैसे, सिगमन्ड फ्रायड ने चेतावनी दी है। उन्होंने कहा है, खबरदार! हर सभ्यता की अपनी-अपनी बीमारियाँ होती हैं, हर समाज की कुछ कमियाँ, बुराइयाँ हुआ करती हैं। इस टेक्नोलॉजिकल सभ्यता की भी अपनी सीमाएँ हैं। इसके अपने अभिशाप हैं। वे अभिशाप क्या हैं?

नर्वस ब्रेक डाउन, खण्डित व्यक्तित्व, मधुमेह, तनाव, नींद न आना, इत्यादि। ये सब आधुनिक सभ्यता का भूत की तरह पीछा कर रहे हैं। इनका प्रभाव चारों तरफ फैलता जा रहा है। आधुनिक सभ्यता के बारे में आप लोगों की मान्यताएँ और विचार अभी अपरिपक्व हैं। इसलिए हमारे देश के लोगों को, हमारे समाज के विद्वानों और मनीषियों को तथा यहाँ की बड़ी-बड़ी कंपनियों के निदेशकों को यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिए, कभी नहीं भूलनी चाहिए कि जैसे किसी जाति और समाज के उत्थान के लिए पदार्थ की जरूरत है, उसी प्रकार पदार्थ को भोगने के लिए जाति और इन्सान की जरूरत है। यदि आपको भिलाई स्टील प्लांट की आवश्यकता है, तो उसे भी आपकी आवश्यकता है। भिलाई स्टील प्लांट से बहुत-सी चीजें आपको मिलती हैं। लेकिन जो चीजें मिलती हैं, उनको भोगने के लिए आपके पास शक्ति होनी चाहिए।

यदि मन में शक्ति नहीं हो, शरीर में बीमारियाँ हों, व्यक्तित्व में दोष या त्रुटियाँ हों, तो ऐसी समस्याओं को लेकर हम क्या पायेंगे; हम तो पागल हो जायेंगे। उस टेक्नोलॉजी के वैभव और सम्पत्ति को लेकर हम क्या करेंगे जब हमारा बेटा पागल हो जाये, हमारी पत्नी तलाक दे दे और हम स्वयं परेशान होकर बीमार हो जायें!

हमारे ऋषि-मुनि बहुत पहले ही अनेक प्रकार के ज्ञान दे गये हैं। हमारा देश पहली बार आगे नहीं बढ़ रहा है, बल्कि बहुत पहले हमारे हिन्दुस्तान में ऐसी सभ्यता थी, जो आज की अपेक्षा बहुत उन्नत थी। हो सकता है, आपके पास इतिहास न हो। हो सकता है, आपको बतलाया नहीं गया हो, मगर हम तो संन्यासी हैं, हम किताब की बात नहीं मानते, हम देश-देश को छानते हैं। हम जानते हैं कि इस देश ने हजारों साल पहले उन्नत सभ्यता को देखा है, अभिशापों को देखा है, उसके पतन को भी देखा है। इसलिए उन्होंने अपनी सन्तानों को लिख दिया – योगाभ्यास करो।

योग बनाम धर्म

योग धर्म से बहुत ऊँचा है, बल्कि सही मायने में देखा जाये तो यह धर्म की नींव है। इस सिलसिले में हम एक बात निश्चित रूप से बतला देना चाहते हैं कि हम लोग योग के साथ किसी धर्म को लेकर नहीं चल रहे हैं, हम केवल योग का प्रचार कर रहे हैं। यह बात हमेशा याद रखेंगे। योग का किसी धर्म के साथ कोई विरोध नहीं है, मैं इस बात को जानता हूँ। मध्य एशिया और इण्डोनेशिया में मेरे लाखों मुसलमान चेले हैं। यूरोप में ईसाई भी मेरे शिष्य हैं। उनमें कितने कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट मेरे चेले हैं; यहूदी तो हजारों की संख्या में हैं। मगर किसी मुसलमान, यहूदी या कम्युनिस्ट ने यह कहने की हिम्मत नहीं की कि तुम धर्म की बात करते हो। इसलिए कोई व्यक्ति यह न समझे कि हम आर्यसमाजी या सनातनी हिन्दू हैं और हम योग करेंगे तो हमारा धर्म बिगड़ जायेगा। किसी का धर्म नहीं बिगड़ता है।

जो धर्म बिगड़ सकता है, वह धर्म कैसे हो सकता है? जो सूरज अपवित्र हो जाये, वह सूरज नहीं है। जो गंगा अपवित्र हो जाये वह गंगा नहीं है। जो अमृत विष बने वह अमृत नहीं है। इसी तरह जो धर्म बिगड़ जाये वह धर्म नहीं है।

धर्म सदा पवित्र होता है, चाहे वह सनातन धर्म हो या आर्य समाज, वैष्णव धर्म हो या ब्राह्मण धर्म, शैव मत हो या जैन मत अथवा बौद्ध मत। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई – सबके धर्म पवित्र हैं। धर्म सदा पवित्र

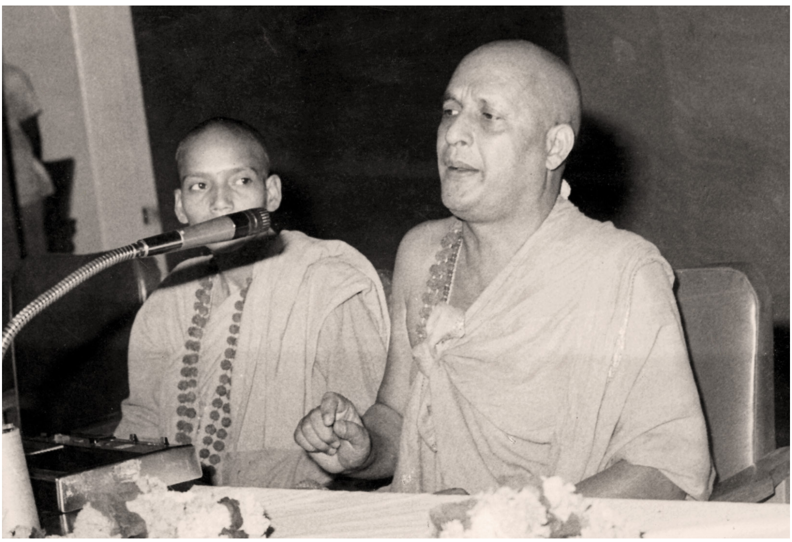

है, उसको कोई बदल नहीं सकता है। मेरे धर्म को कोई बदल नहीं सकता। मगर इतना अवश्य है कि योग मनुष्य की संकीर्णता की दीवारों को तोड़ेगा। फिलोसॉफिकल न्यूरोसिस को, दार्शनिक कुण्ठाओं को हटायेगा। बहुत-से लोग सोचते होंगे कि पता नहीं ये बाबाजी कौन-से धर्म की बात सिखलायेंगे। इसलिए सबसे मेरा निवेदन है कि आप डरें नहीं। अपने मित्रों को बोल देना, मुझसे डरने की जरूरत नहीं। योग का अभ्यास करने से कोई धर्म समाप्त नहीं होता। अगर तुम्हारा धर्म इतना अधिक उदार हो कि दूसरों की अच्छी बातों को अपने आप में समेट कर आत्मसात् कर ले, तो वह अधिक विशाल और धनी बनता जायेगा। अगर तुम्हारा धर्म अधिक समृद्ध बन जाये तो उसमें क्या नुकसान है?

मेरे घर में जर्मनी का एक रेफ्रीजरेटर है, कल इंग्लैण्ड से दूसरा भी आ जाये तो उसमें क्या हानि है। हमारे धर्म में आज एक सिद्धान्त है, यदि कल दो हो जायें तो बहुत अच्छा है।

हर व्यक्ति को अपने धर्म को बहुत ज्यादा व्यापक और सम्पन्न बनाने की कोशिश करनी चाहिए। यह हमारा विश्वास है। इस देश की संस्कृति ऐसी ही है। हमें अपने धर्म को, इसके दर्शन को ऐसा उदार बनाना चाहिए कि इसमें ज्यादा-से-ज्यादा चीजें समा सकें, बल्कि हम तो कहते हैं कि योग का अभ्यास करने से आप अपने धर्म को अच्छी तरह समझ सकते हो।

– 5 फरवरी 1977, योग सम्मेलन, भिलाई स्टील प्लांट

मन:प्रसाद से शांतता तक की यात्रा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

ऐसी स्थिति तक पहुँचने के लिए जहाँ सकारात्मक गुण आपके व्यक्तित्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति बन जाएँ, आपको सबसे पहले जीवनशैली के यम-नियमों का अभ्यास करना होगा। अंततः ये आपको उच्चतर यम-नियमों को समझने में मदद करेंगे। आप स्कूल जाते हैं, शिक्षित होने के लिए, लेकिन शिक्षा की शुरुआत क-ख-ग से होती है जिसे सीखने में पूरा साल लग जाता है। अगर आप इसे एक साल में नहीं सीखते तो आपको एक और साल लगाना होगा। जब तक आप एक स्तर पर महारत हासिल नहीं कर लेते, तब तक आप अगले स्तर पर नहीं जा सकते। आपका उद्देश्य स्वयं को शिक्षित करना है और शिक्षा की पहली शर्त यह है कि आपको अपनी कक्षा में उत्तीर्ण होना होगा। अगर आप उत्तीर्ण नहीं हो पाते तो आपको शिक्षित नहीं कहा जाएगा, और अगर आप उत्तीर्ण हो जाते हैं, तो इसका मतलब यह कि आपने अपने दिमाग और बुद्धि का इस्तेमाल किया है; आपने शिक्षाओं को समझा, ग्रहण और आत्मसात् किया है। तभी आप किसी विषय पर अधिकार के साथ लिख सकते हैं, बोल सकते हैं, प्रस्तुत कर सकते हैं।

जिस प्रकार स्कूली शिक्षा क-ख-ग से शुरू होती है, उसी प्रकार संस्कारों की नींव जीवनशैली-संस्कारों से बनती है, क्योंकि उनका जीवन से प्रत्यक्ष और गहन संबंध होता है। ये ऐसे संस्कार हैं जो पचास साल बाद भी आपके लिए उतने ही उपयोगी होंगे जितने आज हैं। यदि आप आज सौ प्रतिशत प्रसन्न हैं, तो पचास साल बाद भी आपको उतनी ही प्रसन्नता का अनुभव होना चाहिए, उसमें कोई कमी नहीं आनी चाहिए। जिस भाव, तीव्रता और एकाग्रता के साथ आप आज जप का अभ्यास करते हैं, वही पचास साल बाद भी आपके साथ रहेगा, क्योंकि यह एक अखंड मनोवस्था का निर्माण करता है। जीवनशैली के यम-नियम योग के क-ख-ग हैं। फिर भी, यह याद रखें कि आप यम-नियमों का अभ्यास अचानक ही शुरू नहीं कर सकते।

सन् 1983 में किसी ने श्री स्वामी सत्यानंद जी से पूछा, 'योग में यम-नियम का उल्लेख है। आप आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, मंत्र, क्रियायोग, कुंडलिनी योग, राजयोग, हठयोग वगैरह सिखाते रहे हैं, लेकिन

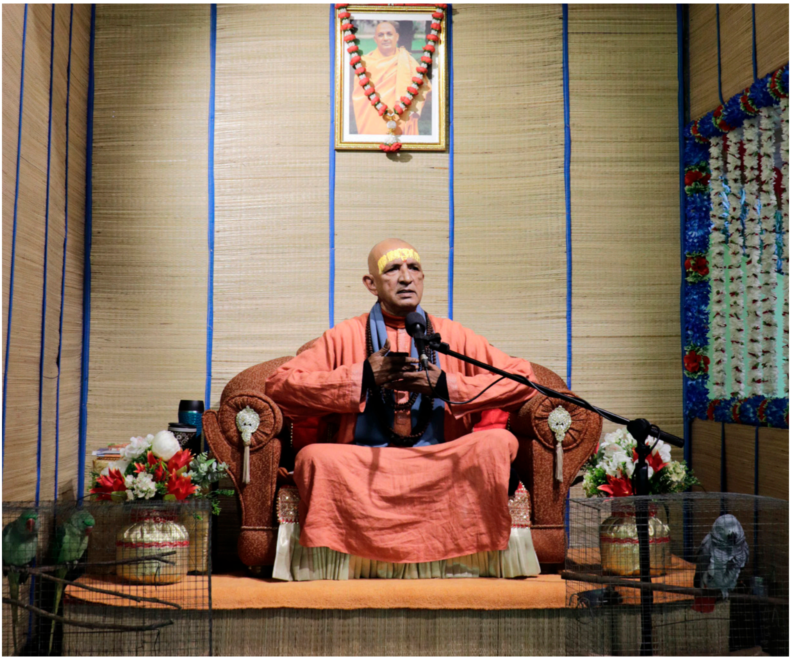

आपने अभी तक यम-नियम के बारे में नहीं बताया है।' श्री स्वामीजी ने उत्तर देते हुए कहा –

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जब हम भवन या अन्य कोई संरचना खड़ी कर रहे होते हैं, तो हमें संरचना के निर्माण, सामग्री आदि से संबंधित सभी विषयों को ध्यान में रखना चाहिए।

जब हम योग और ध्यान का अभ्यास शुरू करते हैं तो हम ऊर्जा के क्षय को रोकने की पूरी कोशिश करते हैं। बेशक, यह हर किसी के लिए संभव नहीं है, लेकिन जहाँ तक संभव हो, अपनी क्षमता के अनुसार यम-नियम का पालन करना चाहिए।

लेकिन इस बारे में मेरा अपना दृष्टिकोण है। मैं यम-नियम के बलपूर्वक अभ्यास से कभी प्रभावित नहीं हुआ हूँ। मुझे लगता है कि हमें अपने जीवन में कुछ ऐसा करना होगा जिससे यम-नियम स्वत: हमारे पास आएँ। हम इन्हें अपने अंदर विकसित नहीं करते, बल्कि ये हमारे अंदर विकसित होते हैं।

हठयोग और यम-नियम के अभ्यासों को जीवन के एक ही विषय के रूप में समझना चाहिए। बहुत-से लोग यम-नियम का बलपूर्वक अभ्यास करने का प्रयास करते हैं और खुद को बहुत कठोर परिस्थितियों में डाल देते हैं।

सत्य और अहिंसा का पालन करना बुरा नहीं है, लेकिन कभी-कभी हम इन धर्मों के अभ्यास से अपने जीवन में उत्पन्न होने वाली मानसिक या भावनात्मक स्थितियों को संभालने में सक्षम नहीं होते। इन यमों के अभ्यास से अपने जीवन में उत्पन्न होने वाली स्थितियों को संभालने में सक्षम होने के लिए हमें नाड़ियों के पूरे समूह को शुद्ध करना होगा।

इसीलिए हठयोग में इड़ा और पिंगला के शुद्धिकरण की प्रणाली है। इड़ा और पिंगला, मानसिक और प्राणिक ऊर्जाओं के वाहक हैं। जब हम अपने शरीर में मानसिक और प्राणिक शक्तियों के बीच सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं, तो महर्षि पतंजलि के राजयोग के ये महान् यम एकदम स्वाभाविक हो जाते हैं।

मैं यह कहने की कोशिश कर रहा हूँ कि यम-नियम हमारे अस्तित्व की स्वाभाविक और सहज अभिव्यक्ति बन जाएँ। इस धर्म की सहजता को उत्पन्न करने के लिए हमें जो प्राथमिक प्रयास करना होगा, वह हठयोग है।

पूरे शरीर में संवेगों का संचालन करने वाली 72,000 नाड़ियों का जब हठयोग की सप्त-भूमिकाओं के माध्यम से शुद्धिकरण होता है तो पूरे शरीर और मन में सामंजस्य का निर्माण होता है। यह मनो-जैविक सामंजस्य अंततः हमारे भीतर इस सकारात्मक धर्म की सहज उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

मैं भीतर और बाहर से शांत हूँ, इसलिए नहीं कि मैं खुद को ऐसा बनने के लिए मजबूर कर रहा हूँ, बल्कि मेरे मनो-जैविक तंत्र की संरचना में हुए महान् परिवर्तन के कारण ऐसा हो रहा है। तब अहिंसा, प्रेम, करुणा और दया से परिपूर्ण होना मेरा स्वभाव बन जाता है।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य का अभ्यास मुझे बलपूर्वक करने की आवश्यकता नहीं है। जब मेरा शरीर शुद्ध हो जाता है और इड़ा एवं पिंगला के आवेगों को संतुलित करके मेरी मनोवैज्ञानिक और

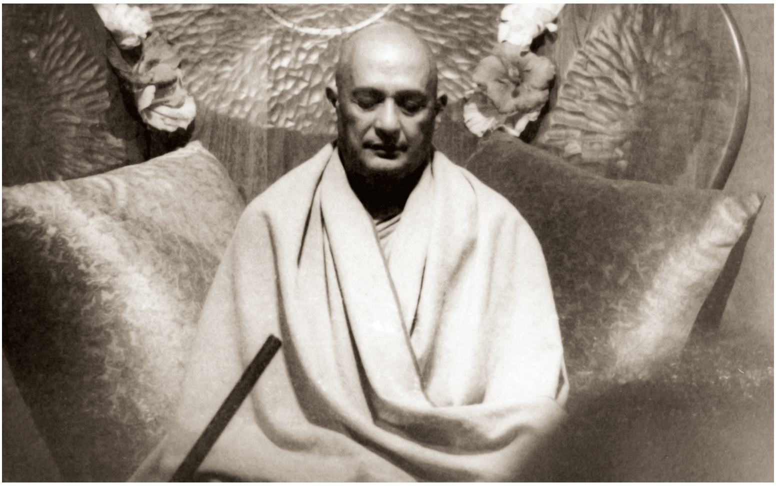

भावनात्मक संरचना को ठीक से समायोजित कर लिया जाता है; और जब मैं कुछ अभ्यासों द्वारा चेतना के उच्च केंद्रों में सामंजस्य बनाए रखने में सक्षम हो जाता हूँ, तब ब्रह्मचर्य मेरी चेतना की एक स्वाभाविक और सहज अभिव्यक्ति बन जाता है। मैं इसका अभ्यास नहीं करता, यह मेरा स्वभाव है। सकारात्मक धर्म को यम और नियम के रूप में इसी तरह विकसित किया जाना चाहिए।

यह श्री स्वामीजी का चिंतन था जिसे उन्होंने 1983 में बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया। हर कोई सोचता है कि यम-नियम का अर्थ है मूल्यों को थोपना। अगर आपको सत्य का पालन करना है, तो आप यह सोचने लगते हैं कि आपको हर समय सौ प्रतिशत सत्य बोलना होगा और सत्य के नाम पर आप कुछ भी बोल देते हैं। जब अहिंसा की बात आती है तो लोग सोचते हैं कि उन्हें बुद्ध या महावीर बनना है। उनके व्यक्तित्व में तो कुछ भी नहीं बदला है, वे केवल अपने अहंकार को पोषित कर रहे हैं। मन, प्राण, भावनाओं या संकल्पों में कोई शुद्धि नहीं हुई है; वे बस यही सोचते हैं कि 'मैं यह अभ्यास कर रहा हूँ, इसलिए मुझे ऐसा होना ही चाहिए।' उनका जीवन कुत्ते की पूँछ के समान होता है – जब तक पूँछ नली में है, तब तक सीधी रहेगी, पर जैसे ही आप उसे नली से बाहर निकालेंगे, वह फिर से मुड़ जाएगी। सीधी रहने की स्थिति नहीं बनी है, इसलिए जैसे ही आप नली हटाते हैं, पूँछ अपनी मूल

स्थिति में वापस आ जाती है। यही कारण है कि लोग यम-नियमों को जीवन में उतार नहीं पाते।

यदि हम श्री स्वामीजी के विचारों को समझने का प्रयास करें, तो हम पाते हैं कि हठयोग में भी सप्तभूमिकाओं का उल्लेख है। मात्र आसन और प्राणायाम हठयोग नहीं है। हठयोगी कहलाने के लिए, हठयोग में सिद्धि प्राप्त करने के लिए आपको सात अवस्थाएँ या अनुभूतियाँ प्राप्त करनी होंगी। पहली है *शोधनम्* जो षट्कर्म के माध्यम से प्राप्त होती है। दूसरी है *दृढता*; तीसरी है *स्थैर्यम्*। आप आसनों के माध्यम से दूसरी और तीसरी अवस्थाएँ प्राप्त कर सकते हैं। चौथी है *धैर्यम्*, और पाँचवी है *लाघवम्* यानि हल्कापन। इन्हें आप प्राणायाम के माध्यम से प्राप्त करते हैं। जब प्राण नियंत्रित और संतुलित होते हैं तो धैर्य रखना संभव होता है। जब आप अधीर होते हैं, तो प्राण बेचैन होते हैं; जब आप धैर्यवान् होते हैं, तो प्राण नियंत्रित होते हैं। प्राणों के नियंत्रण से शरीर में हल्कापन और स्फूर्ति का अनुभव होता है। छठी उपलब्धि है *प्रत्यक्षम्*। मन और इंद्रियों की तीक्ष्णता को *प्रत्यक्षम्* कहते हैं। अंतिम उपलब्धि *निर्लिप्तम्* है, जहाँ सब कुछ स्वाभाविक और सहज रूप से घटित होता है। आप किसी भी चीज में लिप्त होकर न तो उसका निषेध कर रहे हैं और न ही उसे स्वीकार कर रहे हैं; निर्लिप्तता से कर्म स्वाभाविक रूप से समुचित हो जाते हैं।

ये सात भूमिकाएँ शरीर की संपूर्ण भौतिक और प्राणिक संरचना में संतुलन की स्थिति का निर्माण करती हैं, लेकिन इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। शुद्धि प्राप्त करने के लिए आपको षट्कर्मों का अभ्यास केवल एक बार नहीं, कई बार करना होगा। शरीर में दृढ़ता और स्थिरता प्राप्त करने के लिए आपको वर्षों तक आसनों में निपुणता प्राप्त करनी होगी। धैर्य और हल्कापन प्राप्त करने के लिए आपको वर्षों तक प्राणायाम का अभ्यास करना होगा। अभ्यासों की सहायता से आप शरीर और प्राणों में एक स्थिति उत्पन्न करने और उसे स्थिर करने का प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए आवश्यक प्रयास किसी भी मानसिक प्रयास से कहीं अधिक है। जीवनशैली के यम-नियमों का अभ्यास करना अपेक्षाकृत आसान है।

प्रसन्न रहने के लिए आपको किसी अभ्यास की जरूरत नहीं है, आपको किसी आसन, प्राणायाम या षट्कर्म की जरूरत नहीं है। जप के लिए आपको किसी अभ्यास की जरूरत नहीं है। आज अगर आप एक प्रतिशत खुश हैं, तो कल शायद डेढ़ प्रतिशत खुश होंगे, परसों दो प्रतिशत। आप हर दिन इस अवधि

को आधा प्रतिशत बढ़ा सकते हैं और समय के साथ गुणात्मक अंतर ला सकते हैं। इससे जीवनशैली में बदलाव आना शुरू हो जाएगा और आपका बाहरी जीवन नियमित हो जाएगा। फिर आप हठयोग के यम-नियमों की ओर लौट सकते हैं और उन्हें मजबूत बना सकते हैं। एक बार जीवनशैली और हठयोग में संतुलन आ जाए, तो आप राजयोग के यम-नियमों का अभ्यास शुरू कर सकते हैं, और ये बिल्कुल भी मुश्किल नहीं लगेंगे, बल्कि बेहद आसान लगेंगे।

प्रसन्नता और जप

जीवनशैली के यम-नियमों में पहला युग्म है मन:प्रसाद और जप। यहाँ पर 'मन:प्रसाद' शब्द प्रयुक्त किया गया है, न कि चित्त-प्रसाद, बुद्धि-प्रसाद या अहंकार-प्रसाद। मनस् का स्वभाव चिंतन करना और चिंतन को चिंता में बदलना है। आप किसी चीज के बारे में सोचना शुरू करते हैं और फिर विचार चिंता में बदल जाते हैं, जिससे रातों की नींद उड़ जाती है, और अंतत: रोग और अवसाद होता है। यह वह आयाम है जिसमें मन का इंद्रिय-विषयों के साथ संपर्क होता है, और इच्छा, अपेक्षा, भय और असुरक्षा के कारण लगातार तीव्र तरंगें उठती रहती हैं। इसी आयाम में मन:प्रसाद का प्रयोग करना है, जिसका अर्थ है मन को चिंता में नहीं फँसने देना, बल्कि प्रसन्नता की स्थिति में लाना। सोचो, चिंतन करो, लेकिन चिंता न करो। आप तभी चिंता नहीं करेंगे जब चिंतन प्रसन्न अवस्था में होगा। दु:खी मन में चिंता होती है, सुखी

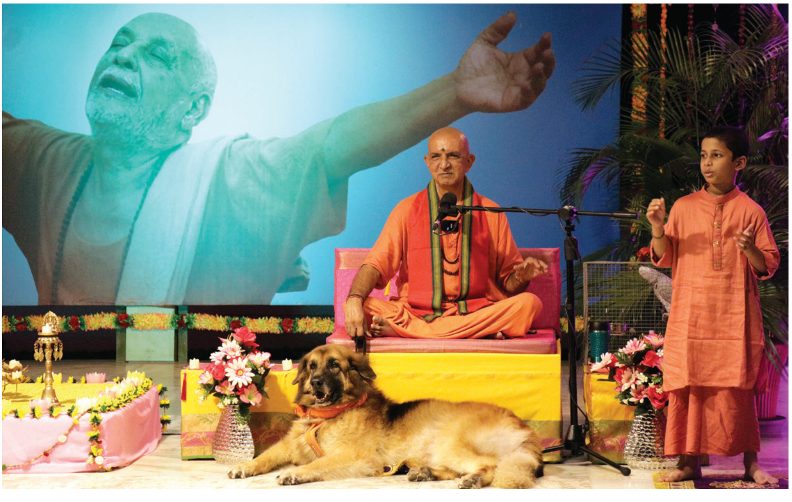

योग भूमि मित्र
yoga bhumi mitra

मन में चिंतन होता है। इसलिए पहला यम है मन:प्रसाद, और मन की प्रसन्नता की अवधि को हर दिन पाँच मिनट बढ़ाना है। यही इस यम की साधना है।

गिनिये कि आज आप कितनी बार खुश थे। खुशी के सभी पलों को जोड़िये और पता कीजिये कि आप कितनी देर खुश थे – एक घंटा, दो घंटे या तीन घंटे? हो सकता है कि आप नौ बजे पाँच मिनट, ग्यारह बजे ढाई मिनट और तीन बजे साढ़े चार मिनट तक खुश रहे हों, और इसके बाद अगली समस्या ने आपको आ घेरा हो। अगर आप इस तरह विश्लेषण करें, तो आप पाएँगे कि पूरे दिन में आप एक या दो घंटे से ज्यादा खुश नहीं रहे, जब आप अपनी सारी परेशानियाँ भूलकर मुस्कुरा और हँस सके। क्या आप इस अवधि को बढ़ा सकते हैं?

मन:प्रसाद के सम्पूरक नियम को जप कहते हैं। जप मन का प्रशिक्षण है। चौबीसों घंटे आप संसार से जुड़े रहते हैं, यहाँ तक कि रात को सोते समय भी आप संसार के काम-काज से जुड़े रहते हैं। जब आप दस मिनट जप का अभ्यास करते हैं, तो संसार से एक विच्छेद होता है और आप आंतरिक आनन्द से जुड़ते हैं। उन दस मिनटों के लिए आपका मन चिंताओं और परेशानियों से मुक्त होकर शांति और आनंद से जुड़ा होता है। जप का यही उद्देश्य है और यही यौगिक जीवनशैली का पहला नियम है।

क्षमा और नमस्कार

अगला युग्म है क्षमा और नमस्कार। कल्पना कीजिए कि आपके घर में तीन-चार बच्चे हैं, दिनभर वे शोर मचाते रहते हैं, चीजें तोड़ते रहते हैं, सबको परेशान करते रहते हैं। कई बार आपको उन पर गुस्सा भी आता है। आपको गुस्सा इसलिए आता है कि वे आपके कीमती चीजें तोड़ते हैं, और आपको लगता है कि वे आपकी मेहनत पर पानी फेर रहे हैं। आपको बच्चे पर गुस्सा नहीं आ रहा, बल्कि उस चीज के टूटने पर गुस्सा आ रहा है।

आप इस स्थिति से दो तरह से निपट सकते हैं, गुस्सा करके बच्चों पर चिल्लाएँ या फिर शांत रहकर उन्हें प्यार से कहें कि चीजें न तोड़ें। अगर आप गुस्सा करेंगे, तो वे भी प्रतिक्रिया देंगे, क्योंकि एक नकारात्मक चीज हमेशा प्रतिक्रिया के रूप में दूसरी नकारात्मक चीज को जन्म देती है। अगर आप शांत रहेंगे, तो इस बात की ज्यादा संभावना है कि वे आपकी बात सुनेंगे। जब आप शांत होते हैं और दूसरे व्यक्ति के प्रति मन में कोई क्षोभ नहीं होता,

तो उस स्थिति को क्षमा कहते हैं। मन में कोई क्षोभ, घृणा या क्रोध नहीं होता और आप शांति से दूसरे व्यक्ति को सुधार सकते हैं और उसे सही रास्ते पर लाने में मदद कर सकते हैं। आप जानते हैं कि अगर चीनी मिट्टी की गुड़िया टूट गई है, तो उसे ठीक करने की कोशिश करना बेकार है, और अगर आप बच्चों को डाँटेंगे तो वे और चीजें तोड़ देंगे। इसलिए आप उन्हें समझाते हैं कि यह एक महंगी और नाजुक चीज है जिसके साथ सावधानी बरतनी चाहिए। आपको दूसरे व्यक्ति की कमजोरियों से प्रभावित नहीं होना है, इसके बजाय एक सकारात्मक रास्ता ढूँढ़ना है।

इसके साथ के नियम का नाम है नमस्कार। स्वामी शिवानंद जी ने कई बार कहा है कि वे सभी को नमस्कार करते हैं। श्री स्वामीजी कहते थे कि स्वामी शिवानंद जी हमेशा सभी को नमस्कार किया करते थे। वे कहते थे, 'मैं सभी में उस परम तत्त्व को देखता हूँ, इसलिए मैं सभी के सामने वैसे ही झुकता हूँ जैसे मैं अपने ईश्वर के सामने झुकता हूँ। मैं एक कोढ़ी के सामने झुकता हूँ जिसमें मैं नारायण को देखता हूँ और मैं भारत के राष्ट्रपति के सामने भी झुकता हूँ जिसमें मैं नारायण को देखता हूँ।' यह विनम्रता का भाव है जो सभी के प्रति सम्मान पैदा करता है।

विनम्रता आपको कभी भी कुछ गलत करने नहीं देगी। आप जानेंगे कि हर परिस्थिति और हर कार्य में कुछ अच्छाई छिपी होती है। जब आप किसी भी घटना पर प्रतिक्रिया करने के बजाय, उसमें अच्छाई ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, तो क्षमा स्वाभाविक रूप से आती है। कई बार आप इस अच्छाई

को तुरंत नहीं देख पाते, फिर भी हर कार्य में सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तत्त्व हमेशा मौजूद होते हैं।

मन और शरीर में संयम

जीवनशैली यम-नियमों का तीसरा समूह दांति और इंद्रिय-निग्रह है। दांति मन का संयम है और इंद्रिय-निग्रह इंद्रियों का। दांति तब शुरू होती है जब आपको एहसास होता है कि आप अपनी सीमा लांघ रहे हैं, और आप उस अति को नियंत्रण में लाने का प्रयास करते हैं। दांति का अर्थ किसी चीज से मन को हटाना नहीं है, इसका अर्थ है मन को अति की स्थिति में नही आने देना, संयम का अभ्यास करना। लोभ, द्वेष, क्रोध, भय, यहाँ तक कि प्रेम या करुणा में भी अति नहीं होनी चाहिए। जब मन पूरी तरह से संयमित हो और आप हर चीज के बारे में उसके सही अनुपात में सोचें, तो वह दांति है।

आपको अपने विचारों और भावनाओं के स्वरूप पर ध्यान देकर देखना होगा कि आप कहाँ फिसल रहे हैं। आपको अपने मन का साक्षी बनना होगा और हमेशा यह भाव रखना होगा कि 'मैं स्वयं को देख रहा हूँ, मैं स्वयं का साक्षी हूँ।' दांति में यही मुख्य आवश्यकता है। इंद्रिय-निग्रह के साथ भी यही बात लागू होती है। जब आप भूखे होते हैं और भोजन को देखते हैं, तो आपकी आँखें आपके पेट से बड़ी होती हैं। आप जितना खा सकते हैं, उससे ज्यादा थाली में ले लेंगे। लेकिन अगर आप अपनी भूख मिटाने के लिए जरूरी मात्रा ही लेने का संयम रख सकें और लालच में न पड़ें, तो यह इंद्रिय-निग्रह है। यह किसी चीज को नकारना या अस्वीकार करना नहीं है, बल्कि संतुलन और संयम है।

समदृष्टि और मैत्री

चौथा युग्म अद्वेष और मैत्री है। अद्वेष का अर्थ है समदृष्टि बनाए रखना। घर में भी इसका अभ्यास जरूरी है। अगर समान दृष्टि नहीं होगी तो झगड़ा होगा ही। एक बच्चे को ज्यादा चॉकलेट दे दो, फिर देखो क्या होता है! प्राय: माता-पिता भी किसी एक बच्चे को दूसरों से ज्यादा प्यार करते हैं, वे अद्वेष्टा नहीं होते। पिता सबसे बड़े बच्चे से प्यार करता है और माँ सबसे छोटे बच्चे से, और बीच वाले को उपेक्षित छोड़ दिया जाता है – यही तो होता है न?

अद्वेष का अर्थ है कि न कोई तुम्हें अधिक प्रिय है और न कोई कम। ईश्वर घोर पापी और परम पुण्यात्मा, दोनों को समान रूप से प्रेम करते हैं। वे किसे

मोक्ष देते हैं, यह अलग बात है। वे पापी को नरक और पुण्यात्मा को स्वर्ग भेज सकते हैं, फिर भी इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें एक प्रिय है और दूसरा नहीं। यदि राग और द्वेष का प्रभाव ईश्वर पर पड़े, तो फिर वे ईश्वर कैसे? यदि वे आपसे कहें, 'मैं उसे अधिक पसंद करता हूँ और तुम्हें कम', तो क्या आप उन्हें उतना ही सम्मान देंगे? नहीं। घर पर भी यही स्थिति है। यदि कोई पिता कहे कि मैं इस बच्चे को अधिक प्रेम करता हूँ और उस बच्चे को कम, तो दूसरा बच्चा फिर कभी अपने पिता को सम्मान नहीं देगा।

अद्वेष व्यक्ति के साथ एकता का भाव है, चाहे वह व्यक्ति डाकू हो या साधु। जब बच्चे भूखे होते हैं, तो माँ यह नहीं देखती कि कौन कमाता है और कौन नहीं, कौन आई.ए.एस. है और कौन चोर। वह सबको भोजन की थाली परोस देती है। अद्वेष भाव वह है जहाँ आप दूसरे व्यक्ति के दोष नहीं देखते, क्योंकि जैसे ही आप दोष देखते हैं, प्रेम और एकता का भाव कम हो जाता है। जब आप दूसरे व्यक्ति में अच्छाइयाँ देखते हैं तब अद्वेष का भाव अवश्य हो सकता है।

अद्वेष भाव की अभिव्यक्ति मैत्री में होती है। लोग सोचते हैं कि आप केवल अपने बराबर के लोगों के साथ ही मित्रता कर सकते हैं। राजा किसी भिखारी के साथ मित्रता नहीं करेगा, और एक भिखारी भी राजा के साथ मित्रता नहीं करना चाहेगा। लोग मित्रता को इस परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, क्योंकि वे समझ नहीं पाए हैं कि इसका वास्तविक आधार क्या है। मित्रता दूसरे व्यक्ति को पहचानने की प्रक्रिया है। पहचान के क्रम में यदि आप उस व्यक्ति के जीवन में कोई कमजोरी देखते हैं, तो आप उसे इस कमजोरी से बाहर निकलने में मदद करने का प्रयास करते हैं ताकि वह प्रगति कर सके। इसी तरह, यदि उसके पास क्षमता या प्रतिभा है, तो उसका समर्थन करने का प्रयास होता है। मित्रता एक ऐसा रिश्ता है जिसमें आप कोई अंतर नहीं देखते, आप दूसरे व्यक्ति के साथ एकत्व का अनुभव करते हैं और उसे आगे बढ़ने में मदद करते हैं। यही मित्रता का आधार है।

बच्चे स्कूल में दाखिला लेते हैं और दूसरे बच्चों के अच्छे दोस्त बन जाते हैं, जिनसे वे पहले कभी नहीं मिले। ऐसा लगता है जैसे यह रिश्ता जिंदगी भर का हो। वे इतने करीब आ जाते हैं कि सारे मतभेद मिट जाते हैं। फिर अगर उन्हें चोरी करनी पड़े, तो वे साथ मिलकर चोरी करेंगे। अगर उन्हें सिगरेट पीनी हो, तो वे साथ मिलकर पीएँगे। अगर उन्हें किसी को परेशान करना हो,

तो वे साथ मिलकर करेंगे। चाहे अच्छा काम हो या बुरा, वे एक साथ रहेंगे। ऐसा एहसास होता है कि मैं इस व्यक्ति से अलग नहीं हूँ, मेरा दोस्त और मैं एक हैं। यही मैत्री की अभिव्यक्ति है।

ऊर्जा की शुद्धता और दृढ़ता

पाँचवाँ समूह है भाव-शुद्धि और तितिक्षा। भाव-शुद्धि का अर्थ है आपके मन और भावनाओं में शुद्ध, जागृत प्राणों का प्रवाह। जब प्राण भावनाओं के क्षेत्र में जागृत होते हैं तो वे शुद्ध हो जाते हैं। प्रेम, करुणा और दया जैसे सभी सकारात्मक भाव जागृत प्राण और भावना का ही मिश्रण हैं।

जब बच्चा बीमार होता है तो माँ रातभर उसके बिस्तर के पास बैठी रहती है। बच्चे के साथ एकता का भाव और प्राण एक साथ आ रहे हैं। यही संवेदनशीलता है। प्राण की गति के कारण ही भावनाओं में संवेदनशीलता होती है। यदि आप प्राण को भावनाओं से हटा दें तो भावनाएँ कठोर हो जाएँगी। कोमल भावनाएँ प्राण से भरी होती हैं। नकारात्मक और तामसिक जीवन में कठोर भावनाएँ प्रकट होती हैं, जबकि आध्यात्मिक जीवन में कोमल भावनाएँ प्रकट होती हैं। अपनी एक कविता में रवींद्रनाथ ठाकुर कहते हैं, 'कोमल करो प्राण'। कोमल प्राण का अर्थ है प्राण और भावनाओं का मिलन, और जब तक प्राण कोमल नहीं होते तब तक आपको आध्यात्मिक अनुभव नहीं होगा। आपको अपने भीतर की कठोरता को समाप्त करना होगा और भाव-शुद्धि एवं तितिक्षा के माध्यम से कोमलता प्राप्त करनी होगी।

तितिक्षा का अर्थ है दृढ़ता और निरन्तरता – चलते रहो, रुको मत। इसे सिर्फ एक बार नहीं, सौ बार करो। उदाहरण के लिए, जब आप ध्यान का अभ्यास शुरू करते हैं तो एक इच्छा जगती है, 'काश! मैं अपने ध्यान में कुछ देख पाता – प्रकाशपुंज, गुरुजी का चेहरा या ॐ का चिह्न। काश मैं कोई दिव्य ध्वनि सुन पाता। काश मैं कुछ सामान्य से बढ़कर जान पाता।' इस तरह आप अपने अंदर एक स्थिति निर्मित कर रहे होते हैं। वर्षों तक आप ध्यान का अभ्यास करते हैं, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हैं कि एक दिन कुछ देख, सुन या जान पाऊँगा। अचानक एक बल्ब चमकता है, कोई आपकी तस्वीर लेता है, और आपको ऐसा लगता है जैसे आपका पूरा चिदाकाश आलोकित हो गया है, और आप बहुत खुश हो जाते हैं। आपको एहसास ही नहीं होता कि यह बस किसी ने कैमरा चमकाया था। ऐसा होता है।

मैं आपको एक सच्ची घटना बताता हूँ। 1968-69 में हम पुराने आश्रम में रहते थे, और हम सब युवा थे। श्री स्वामीजी के पास एक टेप रिकॉर्डर था। हर रात वह टेप रिकॉर्डर श्री स्वामीजी की अलमारी से गायब हो जाता और मेरे बिस्तर पर पाया जाता। उस समय हमारे अलग-अलग कमरे नहीं थे, हम सब हॉल में या बाहर चारपाई पर सोते थे।

जब सभी संन्यासी सो जाते तो हममें से कुछ युवा संन्यासी चुपचाप उठकर किसी की चारपाई के नीचे टेप रिकॉर्डर रख देते और मच्छरदानी पर हेडफोन रखकर उसे बजाना शुरू कर देते। मच्छरदानी के अंदर बैठा संन्यासी ध्यान कर रहा होता और कल्पना करता कि उसे दिव्य ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं! हम एक संन्यासी को खास तौर पर परेशान करते थे जो खुद को एक महान् ध्यान योगी मानता था – वह गहरी साँस लेता, कुंभक का अभ्यास करता, और फिर आप उसे खींच सकते थे, धक्का दे सकते थे, लेकिन वह स्थिर रहता। इसलिए वही हमारा पहला निशाना था।

हम उसकी मच्छरदानी के ऊपर हेडफोन रखकर टेप बजाते थे। वहाँ बिजली नहीं थी, कहीं कोई रोशनी नहीं थी, उस घोर अँधकार में वह संगीत सुन रहा था। वह सोचता कि यह संगीत कहाँ से आ रहा है, उसे मालूम नहीं था कि नीचे टेप रिकॉर्डर चल रहा है। अगले दिन उसने श्री स्वामीजी से कहा, 'स्वामीजी, मैंने ध्यान सिद्ध कर लिया है।' श्री स्वामीजी ने कहा, 'सचमुच? कैसे?' उसने कहा, 'मैं कल रात ध्यान का अभ्यास कर रहा था और मुझे दिव्य संगीत सुनाई दिया।' बगल के कमरे में हम हँसी से लोटपोट हो रहे थे, लेकिन वह इस बात को लेकर इतना गंभीर था और इतने विश्वास के साथ मानता था कि वह दिव्य ध्वनियाँ सुन रहा है कि हमने उसे कभी सच नहीं बताया। श्री स्वामीजी तो जानते थे कि इस सब के पीछे हम हैं, इसलिए जिस रात हम टेप रिकॉर्डर नहीं ले जाते, वे संन्यासी से अगले दिन पूछते, 'तो कल रात तुम्हारा ध्यान कैसा रहा?' वह जवाब देता, 'स्वामीजी, मैंने अभ्यास तो किया, लेकिन कुछ सुनाई नहीं दिया।' श्री स्वामीजी उसे चिढ़ाते, 'लगता है तुम फिसल रहे हो।' अगले दिन वह अपना प्रयास दुगुना कर देता!

इससे यही संकेत मिलता है कि लोगों में हमेशा कुछ अलग अनुभव करने की जिज्ञासा और उत्सुकता बनी रहती है। कई लोग कहते हैं, 'मैं पंद्रह साल से ध्यान का अभ्यास कर रहा हूँ, फिर भी मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया।' मैं उनसे पूछता हूँ, 'क्या आपने कुछ देखने के लिए ही अभ्यास किया है? अगर

देखना ही है तो खुली आँखों से देखना बेहतर है। अगर ईश्वर को देखना है तो ईश्वर की तस्वीर देख लीजिये। लेकिन अगर कुछ अनुभव करना है, तो देखने और न देखने की बात भूल जाइए, बस अभ्यास करते जाइये, चरण दर चरण, कदम दर कदम।' इसे तितिक्षा कहते हैं। पेड़ों पर फल सही मौसम में ही लगेंगे। इसलिए आपको सही समय का इंतजार करना होगा।

एक बार श्री स्वामीजी ने स्वामी गोरखनाथ और मुझे एक-एक बंद कली दी और पूछा, 'यह कैसे खुलेगी?' स्वामी गोरखनाथ ने पंखुड़ियों को जबरदस्ती खोलना शुरू किया और वे नीचे गिरने लगीं। मैंने सोचा, 'यह परीक्षा में फेल हो रहा है, अगला नम्बर मेरा है, कुछ बेहतर तरकीब सोची जाए।' मैंने एक गिलास लिया, उसमें पानी भरकर उसमें कली डाल दी और श्री स्वामीजी से कहा, 'मैं एक काम निपटाकर थोड़ी देर में वापस आता हूँ।' मैं एक घंटे बाद लौटा तो कली खिल चुकी थी। स्वामी गोरखनाथ ने कहा, 'मेरी कली टूटकर गिर गयी, तुम्हारी खिल गयी!' मैंने कहा, 'तुम्हें बस सही समय की प्रतीक्षा करनी थी।' यही तितिक्षा है – सही परिस्थितियों को प्रकट होने दो। तुम्हें किसी चीज के लिए जोर-जबरदस्ती करने की जरूरत नहीं है। जब परिस्थितियाँ विपरीत हों तो विचलित होने के बजाय तुम बस अनुकूल परिस्थितियों के आने की प्रतीक्षा करो।

शांतता और नियमितता

जीवनशैली के अंतिम यम-नियम हैं शांतता और नियमितता। जब आप अन्य सभी यम-नियमों का अभ्यास कर लेते हैं तो आप स्वाभाविक रूप से

शांत, स्थिर और नियमित हो जाते हैं। हर कोई शांति चाहता है और शांति की तलाश करता है, फिर भी वे शांति का अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि वे अशांति के कारणों की पहचान या उनका निवारण नहीं कर पाते। आप अशांति के कारणों से निपटे बिना शांति चाहते हैं।

जब आप मन:प्रसाद और जप, क्षमा और नमस्कार, दांति और इंद्रिय-निग्रह, अद्वेष और मैत्री, भाव-शुद्धि और तितिक्षा, इन पाँच यम-नियमों का क्रमिक रूप से पालन करते हैं तो आप अशांति एवं विक्षेप के अधिकांश कारणों से निपट लेते हैं, तब आप शांति और स्थिरता का अनुभव कर पाते हैं। यह शांति सदैव आपके भीतर बनी रहती है। इसके साथ ही नियमितता भी आती है। जब आप एक अवस्था, एक स्वभाव, एक आदत, एक संस्कार विकसित कर लेते हैं, तो नियमितता आपके जीवन की एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति बन जाती है। अन्य सभी यम-नियमों का पालन करने से आपकी दिनचर्या बेहतर बनती जाती है, और आप इसे और अच्छा बनाने के लिए प्रेरित महसूस करते हैं।

शांति का मार्ग

अंत में मैं स्वामी शिवानंद जी द्वारा भेजे गए एक संदेश का अंश पढ़ूँगा, जो उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय योग मित्रमण्डल की स्थापना के समय स्वामी सत्यानन्द जी को भेजा था –

> मानव समाज की तह में घुसी घृणा, लोभ, मोह, स्वार्थ और ईर्ष्या को हटाकर आप आत्म-शांति का संदेश सुनाइये। आत्म-शांति से ही विश्व-शांति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

यही वह मार्ग था जिस पर हमारे परमगुरु हमें चलता देखना चाहते थे – शांति का अनुभव और शांति का प्रसार। अगर हम इस मुकाम तक पहुँच पाते हैं तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसके लिए आपको आसन, प्राणायाम, ध्यान और क्रिया योग का अभ्यास करने की जरूरत नहीं है। जीवनशैली के यम-नियमों का पालन करने से ही आपका जीवन शुद्ध, देदीप्यमान्, शांत और निर्मल बन जाएगा।

– 18 जुलाई 2018, गंगा दर्शन

योग में अन्तःकरण का सिद्धान्त

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

अन्तःकरण मनुष्य का आन्तरिक उपकरण है जिसके अन्तर्गत चार तत्त्व या शक्तियाँ हैं – मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार। तंत्र एवं योग के अनुसार ये चार तत्त्व ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा चेतना कार्य करती है। अन्तःकरण होने के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से भिन्न है। जीवन के इन निम्नतर स्वरूपों में अन्तःकरण सुप्त, तामसिक अवस्था में रहता है। प्रकृति की ये रचनाएँ बुद्धि, विवेक, विचार या अहं के स्तर से नहीं, बल्कि शुद्ध सहज वृत्ति के स्तर से कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, कुत्ता सहज रूप से सब्जी की अपेक्षा माँस खाना पसन्द करेगा। वह चेतन रूप से उनमें अन्तर नहीं करता है, यह उसकी सहज वृत्ति है जो उसके शरीर का नियन्त्रण करती है।

मनुष्य में यह क्षमता वर्तमान स्थिति में धीरे-धीरे विकास करती हुई पहुँची है। मनुष्य जीवन के सभी रूपों के बीच से विजयी होकर ऊपर आ गया है और यह उसकी इस आन्तरिक शक्ति के कारण हुआ है जिसने उसे विवेक की, विचार करने, योजना बनाने, स्मरण रखने और कार्य करने की क्षमता प्रदान की है। हालाँकि, मनुष्य का बौद्धिक वर्चस्व उसके अन्तःकरण की पूर्ण क्षमता के लिए किसी भी प्रकार अनुपूरक के रूप में सहायता नहीं करता है। इसमें केवल उस शक्ति की झलक मिलती है जो उसके अन्दर है। यदि यह उपकरण अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त कर ले तो मनुष्य न केवल प्रकृति की निम्नतर रचनाओं को, बल्कि स्वयं अपने अन्दर छुपी हुई शक्तियों को भी नियन्त्रित कर पायेगा जिनमें सृजन, पालन एवं नाश करने की अन्तर्जात क्षमता है। वे योगी जिन्होंने ऐसा करने की शक्ति प्राप्त कर ली है, उन्होंने अपने अन्तःकरण के रहस्यों को ढूँढकर उन पर विजय पायी है।

मानव चेतना अन्तःकरण के माध्यम से कार्य करती हुई अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के अनुभवों से सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करती है, उन्हें वर्गीकृत करती है, उनका अनुमान लगाती है, उन्हें अनुभव करती है और उनका बोध करती है। आप जो भी अनुभव करते हैं, देखते, करते या बोलते हैं, वह सब वहाँ संचित होता है। अन्तःकरण का एक भाग ऐसा है जिसे न केवल इस जीवन और इससे सम्बन्धित अनुभवों का ज्ञान होता है, बल्कि

सम्पूर्ण अन्तरिक्ष एवं ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है। यद्यपि सजगता की स्थूलता के कारण ज्ञान की पूरी क्षमता प्रभावहीन रह जाती है और प्रकट नहीं हो पाती है। यह तब तक इसी स्थिति में रहेगी जब तक व्यक्ति अपने अन्तःकरण का परिष्करण प्रारम्भ नहीं करेगा। अन्तःकरण के परिष्करण से तात्पर्य यह है कि इसे शुद्ध ऊर्जा एवं चेतना की उच्चतम आवृत्ति के समरूप करना होगा ताकि हम इस बात के प्रति सजग हो जायें कि वास्तव में हम जिसे परिष्कृत कर रहे हैं वह उसी ऊर्जा एवं चेतना का सृजन है।

आज मानव शरीर का पूर्ण विकास हो चुका है और क्रमविकास की अगली अवस्था का सम्बन्ध चेतना के क्षेत्र से है। महर्षि अरविन्द ने 'उच्च मानव जाति' की बात कही है, यह तब होगा जब मनुष्य उच्च मन की अवस्था को प्राप्त कर लेगा। 'उच्च मानव जाति' से अभिप्राय यह है कि मनुष्य का मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक और सबसे ऊपर, आध्यात्मिक विकास अपनी पराकाष्ठा पर होगा। वर्तमान में ये क्षमताएँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं और हम अभी भी उनकी जटिलताओं से संघर्ष कर रहे हैं। इस क्षेत्र में हमारी सफलता अपने अन्तःकरण के शुद्धिकरण, उसे प्रदीप्त करने और उसके कार्यों को एकीकृत करने की हमारी कुशलता पर निर्भर करती है।

अन्तःकरण एक अत्यन्त सूक्ष्म ट्रान्समिटर के समान कार्य करता है जो प्रभावों को ग्रहण करता है और उनका संचरण करता है। आपके उपकरण के परिष्करण पर ही उसके कार्य की स्पष्टता एवं सूक्ष्मता निर्भर करेगी। यदि यह स्थूल स्पन्दनों के साथ अनुकूलित है तो ट्रान्समिटर उसे ही परावर्तित करेगा। यदि यह सूक्ष्मतम ब्रह्माण्डीय स्पन्दनों से अनुकूलित हो जाता है तो आप न केवल अपने अस्तित्व के पीछे छिपे रहस्यों को ढूँढ निकालेंगे, बल्कि उन पहेलियों को भी सुलझा लेंगे जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बिखरी हुई हैं।

मनुष्य कार्य और कारण के बीच झूलता हुआ कोई अलग अस्तित्व नहीं है, बल्कि वह तो ब्रह्माण्डीय योजना का एक अभिन्न अंग है, जिसकी प्रत्येक कण के सृजन में एक विशेष भूमिका होती है। अन्तःकरण इस भूमिका को समझने के हमारे प्रयास में महत्त्वपूर्ण ढंग से हमारी मदद करता है।

इस सूक्ष्मतम उपकरण को हमने एक-के-बाद-एक अनेक जन्मों की यात्रा के दौरान स्वयं तैयार किया है। इस प्रकार अन्तःकरण संस्कारों को संचित रखता है, जिन्हें हम एक जन्म से दूसरे जन्म में साथ लिए जाते हैं। एक वाद्ययंत्र के समान यह इतना संवेदनशील होता है कि सूक्ष्मतम स्पन्दनों को भी ग्रहण

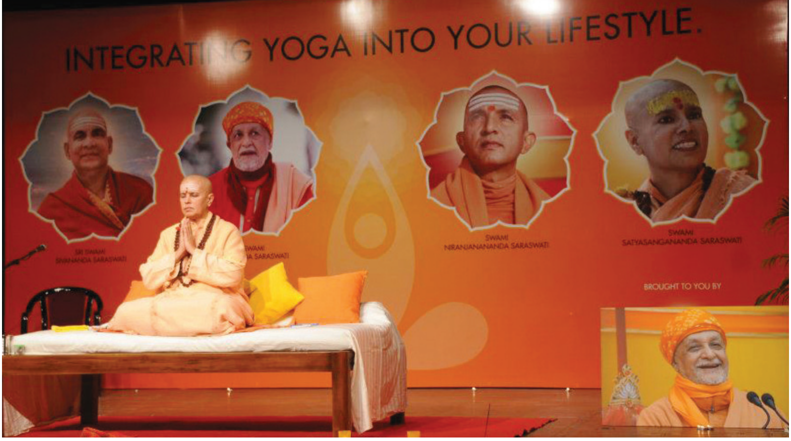

कर लेता है, और हमारे चेतन ज्ञान के होते हुए भी यह ऐसा करता है। आप अपने अन्दर बन रहे कुछ विशेष संस्कारों के प्रति चेतन रूप से सजग नहीं भी हो सकते हैं, किन्तु आपका अन्तःकरण हमेशा चौकन्ना रहता है।

यह आपका अन्तःकरण है जो आपके पूर्व अनुभव या ज्ञान के आधार पर आपके कार्य की दिशा का निर्णय लेता है। वहाँ पर जो विवरण अंकित होता है वह ऐसा अंश है जो तब तक स्वयं आपके सम्मुख प्रकट नहीं हो सकता है जब तक ब्रह्माण्डीय सजगता और आन्तरिक आँखें एवं कान प्राप्त नहीं हो जाते, जो ब्रह्माण्डीय ध्वनि और दृश्य के सूक्ष्म स्पन्दनों को समझ पाते हैं। इसलिए हमें केवल यह नहीं ढूँढ निकालना है कि अन्तःकरण में क्या संचित है, बल्कि यह भी सीखना है कि उसे किस प्रकार नियन्त्रित करना है। तंत्र वह एकमात्र विद्या है जिसने हमें इसका उत्तर दिया है।

अन्तःकरण वह उपकरण है जिसके द्वारा चेतना अपना ब्रह्माण्डीय खेल खेल रही है, जिसे हम उसकी लीला कह सकते हैं। चेतना सब में एक समान होती है – शुद्ध, उद्भासित और प्रदीप्त। यह स्वयं को किस प्रकार अभिव्यक्त करती है, यह इस पर निर्भर करेगा कि इसने अपनी लीला के लिए जिस माध्यम का प्रयोग किया है वह कितना सूक्ष्म, स्पष्ट और प्रखर है। दो भिन्न लोगों में समान प्रेरणा, समान विचार और समान क्रिया हो सकती है, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कार्यशैली और अन्तिम परिणाम पूर्णतः उन दोनों व्यक्तियों के मानसिक स्तर, बुद्धि और अहंकार पर निर्भर करेंगे।

मन की अवस्थाएँ

योग में मन को चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय। इस प्रकार योग चार स्तरों वाले मन की बात करता है जब

कि आधुनिक मनोविज्ञान ने सजगता को तीन स्तरों में ही सीमित कर दिया है – चेतन, अवचेतन एवं अचेतन।

अन्तःकरण चेतन, अवचेतन एवं अचेतन क्षेत्रों के माध्यम से कार्य करता हुआ स्थूल, सूक्ष्म और कारणात्मक अनुभवों को उत्पन्न करता है। चूँकि अन्तःकरण का विकास सत्त्व, रजस् एवं तमस्, इन तीन गुणों के मिश्रण से हुआ है, इसलिए वहाँ होने वाले अनुभव मुख्यतः इन तीन ब्रह्माण्डीय तत्त्वों के व्यापक प्रभाव पर निर्भर करेंगे। मनस्, चित्त, बुद्धि और अहंकार का व्यवहार सत्त्व के प्रभाव में रजस् एवं तमस् से भिन्न होता है और इस प्रकार वे सजगता की तीन अवस्थाओं में भिन्न प्रकार से प्रकट होते हैं। मनस् एवं चित्त चेतन एवं अवचेतन सजगता के अंग हैं और जाग्रत एवं स्वप्न अवस्थाओं की क्रियाओं तथा विचारों को नियन्त्रित करते हैं। बुद्धि एवं अहंकार जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं के परिष्करण की विभिन्न श्रेणियों में उपस्थित रहते हैं।

यह स्पष्ट है कि सजगता की इन तीनों अवस्थाओं में अन्तःकरण तीनों गुणों के प्रभाव में रहता है। जिस क्षण जिस गुण की प्रधानता रहती है उस क्षण वह स्वयं को उसी के अनुरूप परिवर्तित कर लेता है। किन्तु चौथी अवस्था, अर्थात् तुरीयावस्था में गुण किसी भी प्रकार का प्रभाव डालना बन्द कर देते हैं, और इस प्रकार, सजगता पिछली तीन अवस्थाओं में अन्तःकरण में हो रही अस्थिरता से परे निकल जाती है। यह साधना के द्वारा अन्तःकरण की क्षमता के पूर्ण विकास से ही प्राप्त हो पाता है।

योग और तंत्र की गहन साधनाओं से अन्तःकरण की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। साधक को इस शक्तिशाली उपकरण की क्रियाओं एवं इसकी पूरी क्षमता को आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए निर्दिष्ट करने की विधि का बोध हो जाता है।

बुद्धि

बुद्धि को महत् तत्त्व के नाम से भी जाना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि यह शुद्ध चेतना की निकटतम कार्यशक्ति है। जब बुद्धि को इन्द्रिय सुखों या विलासिता की ओर मोड़ दिया जाता है तो यह आत्मा को बन्धनयुक्त कर देती है, किन्तु जब इसे वैराग्य-सम्पन्न कर दिया जाता है तो आत्मा मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाती है। दैनिक जीवन में बुद्धि ही आपको आपके धर्म के अनुरूप चलने के लिए प्रेरित करती है। बुद्धि के कारण ही किसी भी कार्य का मूल्यांकन परिशुद्धता एवं यथार्थता के साथ किया जाता है।

उच्चतर स्तर पर बुद्धि स्वयं को प्रज्ञा एवं वैराग्य के रूप में प्रकट करती है। यद्यपि ये उदात्त गुण बुद्धि में अन्तर्निष्ठ होते हैं, किन्तु माया के प्रभाव से और अहंकार, इन्द्रियों एवं तीन गुणों के सम्पर्क के कारण इन गुणों में बदलाव आ जाता है। बुद्धिमानी, वैराग्य, विवेचन, सहनशीलता, शान्ति, आत्मनिग्रह, विवेक एवं चिन्तन-मनन सात्त्विक बुद्धि की विशेषताएँ हैं। सात्त्विक अवस्था में बुद्धि विचलनमुक्त हो जाती है और एक साक्षी की भूमिका ग्रहण कर लेती है। रजस् के प्रभाव से दोष उत्पन्न होने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप बुद्धि अपने विवेक का उपयोग नहीं कर पाती है, और त्रुटिपूर्ण जानकारियों एवं अविद्या या अज्ञान के द्वारा निर्णय प्रायः दूषित और भ्रामक हो जाते हैं। तामसिक बुद्धि अहंकार के प्रभाव में आ जाती है और भ्रान्तिजनक जानकारियों एवं गलत निर्णयों का आवरण इस पर पड़ जाता है।

साधना में हम बुद्धि की सात्त्विक प्रकृति पर ध्यान करते हैं ताकि तामसिक एवं राजसिक प्रवृत्तियाँ, जो इसकी वास्तविक प्रकृति नहीं हैं और जो सात्त्विक बुद्धि को कार्य करने से रोकती हैं, दूर हो जाती हैं। इस प्रकार मूक साक्षी होने की अनुभूति को बल मिलता है।

अहंकार

अहम् या मैं के होने का भाव अहंकार है। अहंकार के जन्म के साथ ही एक सत्ता का अस्तित्व प्रकट होता है और व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण सृष्टि से अलग देखने लगता है। अहंकार के अन्दर वैयक्तिकता का बीज छुपा होता है जिससे अपनी पहचान बनाने की तथा वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति आसक्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अहंकार आपके रोम-रोम में प्रवेश कर जाता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से प्रकट होता है और यह जो जाल बुनता है उसके बन्धन में मनुष्य अनेक जन्मों तक बँधा रह जाता है।

अहंकार व्यक्ति के अस्तित्व का केन्द्र बन जाता है। केवल अहंकार के कारण ही आप अपने आस-पास की वस्तुओं से सम्बद्ध हो पाते हैं। यदि आप में अहंकार नहीं होता तो आप भी किसी पौधे या सब्जी की भाँति होते और आपको भी अपने अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं होता। यह सृष्टि का विरोधाभास है कि एक ओर अहंकार आपको वस्तुनिष्ठ अनुभवों से बाँधता है और दूसरी ओर यह ऐसा नाभिक है जिसका विस्फोट कर एकीकृत सत्ता को जाग्रत किया जाता है।

जाग्रत या चेतन अवस्था में अहंकार स्थूल शरीर, अर्थात् इन्द्रियों एवं विचारशील मन के माध्यम से कार्य करता है। अवचेतन अवस्था या स्वप्न में अहंकार सूक्ष्म शरीर और स्वप्न के माध्यम से कार्य करता है। जब आप गहरी निद्रा, सुषुप्ति में होते हैं तब यह बीज के रूप में कारणात्मक शरीर में निष्क्रिय हो जाता है, किन्तु ध्यान में यह आन्तरिक सजगता का रूप ग्रहण कर लेता है। अहंकार इतनी गहराई में जड़ जमाये हुए रहता है कि यह सविकल्प समाधि की अवस्थाओं में भी पहुँच जाता है।

अहंकार की क्रियायें सत्त्व, रजस् एवं तमस् के द्वारा प्रभावित होती हैं। सात्त्विक अहंकार 'अहम्' की अवधारणा के लिए उत्तरदायी होता है और यह आत्मानुभूति की प्रक्रिया में प्रेरक का कार्य करता है। अहंकार अवचेतन मन में संस्कारों को उत्तेजित करता है, किन्तु यह सत्त्व के प्रभाव के कारण अस्थायी रूप से इस क्रिया को रोक देता है।

राजसिक अहंकार एक क्रियात्मक शक्ति है जो व्यक्ति में 'अहम्' को जगाती है जिससे अत्यधिक क्रियाशीलता और व्यग्रता उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणामतः विचारों और क्रियाओं का अपव्यय और क्षय होता है। तामसिक अहंकार दुःखदायी और नकारात्मक संस्कारों को बढ़ा देता है जिससे सन्देह, आशंका, भय और कार्य को विलम्ब से करने या टालने की प्रवृत्ति का जन्म होता है।

अहंकार को जीवात्मा के लिए बन्धन और मुक्ति, दोनों का स्रोत माना जा सकता है। यद्यपि यह व्यक्ति की जीवन यात्रा में उसके साथ लम्बे समय तक बना रहता है, किन्तु साधना के द्वारा व्यक्ति धीरे-धीरे इसके नकारात्मक तत्त्वों को परिष्कृत कर सकता है। योगाभ्यास द्वारा हम अहंकार की सूक्ष्म प्रकृति के प्रति अधिक सजग हो जाते हैं, जिससे स्वयं को इसकी निम्नतर क्रियाओं से दूर कर पाना सरल हो जाता है।

मनस् एवं चित्त

मनस् एवं चित्त बाह्य मन और मानस-द्रव्य के प्रतीक हैं। चित्त वह स्थान है जहाँ संस्कार एवं स्मृतियाँ अनुभूतियों के रूप में स्थित होती हैं। मनस् या विचार-प्रतिविचार उनके वाहन हैं या उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम। मनस् एवं चित्त स्वयं कार्य नहीं करते हैं। वे बुद्धि के तर्कपूर्ण विचारों और अहंकार की आग्रही प्रवृत्ति द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

मनस् की यह अन्तर्भूत विशेषता है कि यह रजोगुण के नियन्त्रण में रहता है। यह हमेशा उद्विग्न और विचलित रहता है। जिस प्रकार एक बच्चा एक खिलौने को उठाता है, लेकिन तुरंत उसे रखकर दूसरा उठा लेता है, ठीक उसी प्रकार मनस् की यह प्रवृत्ति होती है कि यह एक विचार से उछल कर दूसरे विचार पर चला जाता है।

यह राजसिक प्रवृत्ति तब परिवर्तित हो जाती है जब मनस् अहंकार के प्रभाव से तामसिक अवस्था में आ जाता है या बुद्धि के प्रभाव से सत्त्व की अवस्था में आने पर रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार, अहंकार एवं बुद्धि मनस् के द्वारा चित्त में संचित संस्कारों का उपयोग करते हुए सुख या दुःख, क्लेश या आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करते हैं।

मनस् की क्रियाओं में तीन गुणों के प्रभाव से निरन्तर परिवर्तन आता रहता है। सात्त्विक अवस्था में मनस् स्थिर, एकाग्र और केन्द्रित हो जाता है। राजसिक प्रभाव से मनस् इन्द्रियों को उत्तेजित और बुद्धि को भ्रमित कर देता है। तामसिक मनस् बुद्धि और इन्द्रियों को आलसी और निष्क्रिय बना देता है।

चित्त को कभी-कभी उच्चतर मन भी कहा जाता है, लेकिन यहाँ केवल स्मृति के रूप में इसके कार्य से हमारा सम्बन्ध है। सत्त्व के प्रभाव से चित्त में संचित संस्कार निष्प्रभावी हो जाते हैं ताकि चेतना शान्त और अविक्षुब्ध रहे। रजोगुण के प्रभाव से राजसिक संस्कार विकल्प एवं विपर्यय के रूप में जाग उठते हैं। इस अवस्था में चित्त ज्ञान एवं अज्ञान, आसक्ति एवं अनासक्ति, दोनों प्रकार के संस्कारों को धारण करता है।

जब तमस् चित्त को प्रभावित करता है तब अवांछित संस्कार जाग उठते हैं। इस प्रकार, व्यक्ति वासनाओं के नियन्त्रण में आ जाता है और सभी अच्छे संस्कार विस्मृत हो जाते हैं। केवल चिन्तन-मनन, धारणा एवं ध्यान की प्रक्रिया के द्वारा अवांछित संस्कारों को समाप्त किया जा सकता है।

हमें यह समझना चाहिए कि आत्मानुभूति प्राप्त करने का मुख्य मार्ग अन्तःकरण में ही अन्तर्निहित है। अपने विकास की दिशा को पूरी तरह अपने नियन्त्रण में रखने के लिए हमें तांत्रिक एवं यौगिक साधना का सहारा लेना होगा। इसके अभ्यास से हम अन्तःकरण की छिपी हुई शक्ति का उपयोग कर सजगता को स्थूल अनुभवों से दूर ले जाते हुए उच्चतर अनुभूतियों की ओर जाने के लिए निर्दिष्ट करते हैं।

अगड़ बम्

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शिव के दो रूप होते हैं, एक निराकार और दूसरा साकार। सबकी आत्मा का नाम है शिव। जो नित्य चेतन, सर्वव्यापक और सदैव सनातन है, उसका नाम है शिव। यह साकार भी है और निराकार भी। विभु भी है और व्यापक भी। शिवोऽहं शिवोऽहं, यही अनुभूति है। शिव की लीला, शिव का नृत्य, इसका संगीत और इसके पार्षद – यह सब ध्यान योग की कहानी है।

चेतना, आत्मा, ब्रह्म – ये सूक्ष्म नाम हैं। ये सबकी समझ में नहीं आते। हम चेतना कहें, तो क्या समझे बतलाओ? महापुरुषों ने उस चेतना को साकार रूप दिया। कैसा साकार रूप? पद्मासन में बैठे हैं, त्रिशूल रखा हुआ है, गंगा जटाओं से बह रही है, चन्द्रमा चमक रहा है, भुजंग फुफकार रहे हैं, सारे शरीर पर भस्म लिपटा हुआ है, चारों ओर जंगल-ही-जंगल है, जंगल के बिलों में बिच्छू रहते हैं। यह शिव जी का पूरा दरबार है।

जो निराकार शिव है, उसको जाग्रत करने के लिए एक साकार प्रतीक हमलोगों के सामने है। बस, इसी ध्येय को लेकर अभी आप लोगों को मेरे साथ गाना है। यह गाना हमने कब सीखा था? जब हम तुम लोगों के समान छोटे-छोटे थे। तब से अब तक यह गाना मुझे बहुत पसंद है। इतना पसंद आया कि मैंने इसको पूरे हिन्दुस्तान और समुद्र की सीमाओं के पार भी गाया है। इसको ग्रामोफोन रिकॉर्ड में भी गाया है। बहुत-से फिल्म वालों ने इस गाने का तर्ज भी बना दिया है, पर ऐसा नहीं समझना कि हमने उनकी कॉपी की है, बल्कि उन्होंने हमारी धुन को कॉपी कर लिया है। मगर उन्होंने इस गाने का हुलिया बिगाड़ दिया है। अब हम सब गायेंगे–

अगड़ बम् अगड़ बम् बाजे डमरू।
नाचे सदा शिव जगत गुरु॥

शंकर जी को नाचना बहुत पसंद है। जैसे नारद जी सब पत्रकारों के बड़े गुरु हैं, उसी तरह से शंकर जी नृत्य शास्त्र के गुरु हैं। पहले हम गायेंगे और उसी भाव में आप लोग साथ देंगे। कोई छूटना नहीं चाहिए, नहीं तो रातभर शंकरजी तुम्हारा पीछा करेंगे!

ताल, राग, छन्द, सब मन की चीजें हैं। मन की सीमा के अंदर ताल है, राग है, छन्द है और जब मन की सीमा टूट जाती है, तो ताल बेताल हो जाता है। शंकर जी धिगैतान-धिगैतान नहीं जानते। ध्यान में कहीं ताल होता है? नहीं। बेताल, बेसुर – उस स्थिति को तुम पाना चाहते हो, जिस स्थिति को प्राप्त करने के लिए सारी दुनिया प्रयत्नशील है, वहाँ सुर नहीं है, ताल नहीं है, और गीत-लय की पहचान भी नहीं है।

– 8 जुलाई 1979, राघवेन्द्र सभा भवन, बिलासपुर

घेरंड संहिता में सप्त साधनात्मक योग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

घेरंड संहिता में महर्षि घेरंड कहते हैं कि घटस्थ योग के अभ्यास के लिए सात गुणों का होना आवश्यक है और इन गुणों के समावेश के लिए सात प्रकार के योगाभ्यास आवश्यक हैं। जिन सात साधनों का वर्णन यहाँ पर किया गया है, वे योग के ही अभ्यास हैं, किन्तु उनकी तुलना अष्टांग योग से मत कीजिए। अष्टांग योग, जिस प्रकार हम जानते हैं, उसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आते हैं, लेकिन महर्षि घेरण्ड इन सात साधनों को बतला कर अपने घटस्थ योग को दूसरा रूप नहीं दे रहे हैं, बल्कि यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अष्टांग योग के ही मूल तत्त्वों को लेकर, उन्हें सात आवश्यकताओं का रूप देकर वर्णित किया है।

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम्॥

शरीर की शुद्धि के लिए सात साधन हैं – शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता। पहला है शोधन, जिसका अर्थ है शुद्धिकरण। शरीर और मन को विकार रहित बनाने के लिए शुद्धिकरण अत्यन्त आवश्यक है। दूसरा है दृढ़ता। कुछ लोग दृढ़ता का अर्थ लगाते हैं 'शक्ति' और कुछ लोग 'मानसिक बल', लेकिन यहाँ पर जिस उद्देश्य से दृढ़ता का प्रयोग किया गया है, वह केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक, विचारात्मक और भावनात्मक भी है।

जिस प्रकार हमलोग अपने अभ्यास क्रम में शरीर को दृढ़ बनाने का प्रयास करते हैं, जिस प्रकार अपनी विचारधारा में हम अपने विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं, दृढ़ और संकल्प शक्ति से पूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं, ठीक उसी प्रकार महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि आत्मशुद्धि के लिए व्यक्ति को दृढ़ता का गुण प्राप्त करना आवश्यक है। परिणाम प्राप्ति तक धैर्यपूर्वक अभ्यास करते रहना दृढ़ता का लक्षण होता है। यहाँ पर दृढ़ता का अर्थ लगा सकते हैं, एक संकल्प को धारण कर चलना, और उस पर अडिग रहना।

तीसरा साधन है स्थैर्य या स्थिरता। शारीरिक स्थिरता प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि यदि किसी अवस्था में हमारा शरीर चंचल है, तो वह

मन को केन्द्रित नहीं होने देगा। स्थिरता को एक गुण या आवश्यकता के रूप में देखा गया है। बाद में बतलाया जाएगा कि हम किस प्रकार इस स्थिरता की अवस्था को प्राप्त करें।

चौथा साधन है धैर्य। यह भी एक गुण है कि व्यक्ति परिस्थितियों से अप्रभावित रहे, अपना धैर्य न खोये, उद्विग्न न हो, अपनी सहनशीलता न खोये। यह मानसिक गुण है, क्योंकि शरीर तो धैर्य खोता नहीं, मन ही धैर्य खोता है।

पाँचवाँ साधन या आवश्यकता है लाघव या हल्कापन। योगी का शरीर हल्का रहना चाहिए, भारी-भरकम नहीं होना चाहिए, चर्बीयुक्त नहीं होना चाहिए। चर्बीयुक्त शरीर को योग के लिए उपयुक्त नहीं माना गया है, क्योंकि यह मान्यता है कि चर्बीयुक्त शरीर में विकार उत्पन्न होते हैं। इसलिए योगाभ्यासी के लिए प्रारम्भ में, जब तक योग सिद्ध नहीं होता, शरीर का हल्का होना आवश्यक है। एक बार योग सिद्ध हो जाये और आप शरीर की अनुभूति के परे चले जाएँ, तब शरीर की क्या अवस्था होती है, इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी है।

इस विचारधारा से बहुत बार यह प्रश्न भी उठता है कि जितने बड़े-बड़े योगी हुए हैं, उन सबका पेट बड़ा क्यों होता है। बहुत बार ऐसा होता है कि जब प्राणशक्ति जाग्रत होती है, तब वह मणिपुर चक्र में केन्द्रित हो जाती है, जिसके कारण सिर्फ पेट बढ़ना शुरू हो जाता है। गरिष्ठ भोजन तो वे लोग कुछ लेते नहीं, घी वगैरह खाते नहीं। बहुत-से योगी केवल फलाहार करते हैं। योग की व्यवस्था में रहकर भी मणिपुर चक्र का विस्तार होना, प्राण-जागृति की अवस्था है। यह शरीर में विकार की अवस्था नहीं है। इसलिए आपने देखा होगा कि बहुत-से सिद्ध महात्मा या सिद्ध पुरुष बड़े पेट वाले होते हैं। किन्तु प्रारम्भ में शरीर दुबला होना चाहिए।

प्रत्यक्षम् छठा गुण है। यहाँ पर प्रत्यक्ष का अर्थ होता है ग्रहणशीलता, अर्थात् ग्रहण करने का स्वभाव। जितने सूक्ष्म या आन्तरिक अनुभव होते हैं, उन्हें मन की दृष्टि में स्पष्ट रखना ही प्रत्यक्षम् का तात्पर्य है। प्रत्यक्षम् शब्द में प्रति उपसर्ग है, जो शब्दों के पहले आकर सामना, साम्मुख्य आदि का द्योतन करता है और अक्षम् का अर्थ होता है चक्षु, नेत्र, देखना। यह प्रत्यक्ष की अवस्था लय की अवस्था नहीं है, जहाँ पर आपको कुछ दिखलायी न दे। यह इन्द्रिय अनुभूति की अवस्था भी नहीं है, बल्कि यह अवस्था है जिसमें आप एक आन्तरिक अनुभव को देखते, अनुभव करते और उसी में अपने आपको स्थित करते हैं।

सातवाँ गुण है निर्लिप्तम्। निर्लिप्त का तात्पर्य बहुत-से लोग समाधि से लगाते हैं, लेकिन वास्तव में इसका अर्थ है मन की अनासक्त अवस्था। लिप्त होने का मतलब – 'माखी गुड़ में गड़ी रहे, पंख रहे लपटाय, हाथ मले और सिर धुने, लालच बुरी बलाय।' निर्लिप्त का मतलब जहाँ मन लिप्त न रहे। लिप्त का यहाँ अभी सम्बन्ध जोड़ा जा रहा है जीवन, शरीर, विचार, भावना, वासना और विकार से। इससे परे आत्मज्ञान में अपने आपको स्थित कर लेना निर्लिप्त अवस्था है। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति से, जो हमें जगत् की ओर आकृष्ट करती है, मुक्त हो जाना निर्लिप्त अवस्था है।

इन स्थितियों की प्राप्ति के लिए अभ्यास

महर्षि घेरण्ड के अनुसार एक साधक के लिए ये सात गुण आवश्यक माने गये हैं – शुद्धिकरण, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य, शरीर का हल्कापन, प्रत्यक्षम् और निर्लिप्तता। इन सात गुणों के समावेश के लिए सात प्रकार के योगाभ्यास हैं, जो निम्नांकित मन्त्रों में बतलाए गये हैं।

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः॥

अर्थात् षट्कर्मों से शरीर शुद्धि, आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति या हल्कापन, ध्यान से आत्म-साक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।

षट्कर्मों से शुद्धिकरण की अवस्था प्राप्त होती है। षट्कर्म में छः प्रकार की क्रियाएँ होती हैं, जिनके द्वारा हम अपने शरीर को विकार रहित, निर्मल, स्वच्छ बना सकते हैं। ये क्रियाएँ हैं – धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति।

आसनेन भवेद्दृढम् – आसनों से शारीरिक शक्ति या दृढ़ता प्राप्त होती है, लेकिन एक बात याद रखने योग्य है कि आसन से शारीरिक शक्ति या बल की प्राप्ति का अर्थ मांसपेशीय बल की प्राप्ति नहीं है। जिस प्रकार व्यायाम में व्यक्ति दण्ड-बैठक जैसी कसरतें कर, एक पहलवान की तरह अपने शरीर को

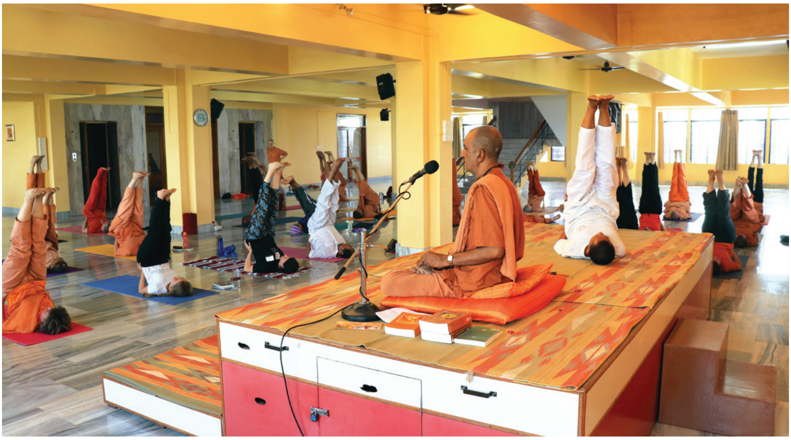

बनाता है, वैसी चर्चा यहाँ पर नहीं हो रही है। यहाँ पर दृढ़ता या बल का अर्थ होता है, शारीरिक क्षमता, आन्तरिक बल और इसके साथ-साथ स्वास्थ्य की प्राप्ति, क्योंकि व्यक्ति भीमकाय और हृष्ट-पुष्ट होने के बावजूद भी रोगों के प्रभाव में आता है, उसको स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ पर शुद्धिकरण के पश्चात् आसन द्वारा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य एवं बल की प्राप्ति की ओर संकेत है।

मुद्रया स्थिरता चैव – मुद्रा के अभ्यास द्वारा स्थिरता की प्राप्ति होती है, अर्थात् मन और प्राण की चंचलता समाप्त होती है। मुद्राओं को विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं के रूप में समझा जा सकता है। इनके द्वारा हम प्राण शक्ति को पुनः केन्द्रित करने में सक्षम हो जाते हैं।

किर्लियन फोटोग्राफी एक ऐसी प्रणाली है, जिसके द्वारा शरीर के किसी अंग का चित्र लेने पर उसमें शरीर का वह अंग दिखलायी नहीं देता, बल्कि उस अंग के चारों ओर एक आभा मण्डल या ऊर्जा मण्डल दिखलायी देता है। अनुसन्धान में यह भी पाया गया है कि शरीर के छोरों, जैसे, हाथ, पैर, सिर, इत्यादि अंगों से प्राणशक्ति अधिक प्रवाहित होती है। किर्लियन फोटो में अंगुलियों में अधिक मात्रा में प्राणशक्ति का प्रवाह दिखलायी देता है, लेकिन पीठ में नहीं। पैरों में प्राणशक्ति का अत्यधिक प्रवाह दिखलायी देगा, लेकिन जाँघ और पिण्डलियों में कम दिखलायी देगा।

ऐसी मान्यता है कि हाथ, पैर और सिर – शरीर के इन तीन छोरों से प्राणशक्ति हमेशा शरीर से बाहर निकलती रहती है। योग में भी यही मान्यता

है। मुद्राओं के अभ्यास द्वारा हम इस प्राणशक्ति के निर्गमन को रोकते हैं, उसे पुनः अपने शरीर के भीतर ले लेते हैं। मुद्राएँ अनेक प्रकार की होती हैं। हम यहाँ केवल दो मुद्राओं का वर्णन करेंगे। पहली है ज्ञानमुद्रा जिसमें हाथों को अपने घुटनों पर रखते हैं। तर्जनी अंगुली को अँगूठे के मूल में रखते हैं। इससे तर्जनी अंगुली की प्राण वाहिका से जो शक्ति निरन्तर बाहर निकलती रहती है, वह पुनः शरीर में प्रवेश कर जाती है। दूसरी मुद्रा है चिन्मुद्रा, जिसका अभ्यास ज्ञानमुद्रा की भाँति ही है, अन्तर केवल इतना है कि हथेलियाँ घुटनों पर ऊपर की ओर खुली हुई रहती हैं। हाथों और पैरों की अन्य अनेक मुद्राएँ होती हैं। पद्मासन या सिद्धासन में इन मुद्राओं के अभ्यास द्वारा हम प्राण को अपने भीतर वापस खींच लेते हैं। इन शारीरिक अवस्थाओं के अतिरिक्त दूसरे प्रकार की मुद्राएँ भी होती हैं। जैसे, शाम्भवी मुद्रा – दोनों आँखों से भ्रूमध्य को देखना और नासिकाग्र दृष्टि – नाक के अग्र भाग को देखना। प्राण और मन की चंचलता मुद्राओं के अभ्यास से समाप्त हो जाती है।

प्रत्याहारेण धीरता – प्रत्याहार के अभ्यासों से धैर्य को प्राप्त किया जाता है। प्रत्याहार के अभ्यास में सबसे पहले अपने आपको केन्द्रित करना, अन्तर्मुखी बनाना और इन्द्रियों से अलग करना सीखते हैं। प्रत्याहार के अभ्यास से बाह्य इन्द्रियों के द्वारा, जिन्हें हम कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं, प्राप्त अनुभव कम होते जाते हैं और मन भीतर केन्द्रित होने लगता है। इस प्रकार यहाँ धीरता का अर्थ होता है, मन को इन्द्रियों से हटाकर मानसिक धैर्य स्थापित करना। जब तक मन इन्द्रियों से जुड़ा हुआ और चंचल है, तब तक धैर्य की प्राप्ति नहीं होती।

बहुत बार ऐसा होता है कि लोग जब यात्रा पर जाते हैं, और यात्रा के पूर्व रेलवे स्टेशन पहुँचते हैं, तो जब तक गाड़ी नहीं आती, वे बैठते नहीं हैं। प्लेटफार्म के एक किनारे से दूसरे किनारे तक चक्कर काटते रहते हैं। उस समय धैर्य नहीं रहता, क्योंकि एकाग्रता या सजगता विक्षिप्त रहती है। और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो स्टेशन पहुँचते हैं, चुपचाप बैठ जाते हैं। सोचते हैं, चाहे गाड़ी पाँच घण्टे विलम्ब से आये, हमें तो इसी गाड़ी में जाना है। बैठे रहेंगे, चक्कर लगाने से क्या फायदा? यहाँ पर मन और इन्द्रियों की चंचलता नहीं है। मन को इन्द्रियों से अलग कर धैर्य को प्राप्त किया जाता है।

प्राणायामाल्लाघवं च – प्राणायाम के द्वारा हल्केपन की प्राप्ति होती है, स्थूलता को कम किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि जब हम प्राणायाम

का अभ्यास करते हैं, तब इसमें प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त करना हमारा उद्देश्य रहता है, फिर शारीरिक स्थूलता कैसे कम होती है। यह तो विदित है कि जब हम प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, तब प्राणशक्ति की जागृति के समय शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। यह प्राणों की गर्मी है, आन्तरिक गर्मी है और यह प्रत्यक्ष रूप में सिद्ध लोगों के जीवन में दिखलायी देती है। बर्फीले पर्वतों में जो योगी लंगोटी या कौपीन पहनकर रहते हैं, वे प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, जिससे आन्तरिक गर्मी उत्पन्न होती है और ठण्ढ नहीं लगती।

ऐसे भी प्राणायाम होते हैं कि चाहे कितनी ही गर्मी क्यों न हो, आपको पसीना निकलेगा ही नहीं। वे शरीर के तापमान को कम कर देते हैं। आप रेगिस्तान में चले जाइये, तपती धूप में खड़े हो जाइये, लेकिन पसीना नहीं निकलेगा, क्योंकि शरीर का जो तापमान है, वह कम हो गया है।

प्राणायाम के अभ्यास द्वारा जब ऊर्जा उत्पन्न होती है तब शरीर के विकार उसमें अपने आप जलने लगते हैं। चर्बी तक जल जाती है, गल जाती है। इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा व्यक्ति अपनी शारीरिक स्थूलता को कम करता है, अपने शरीर को हल्का और स्फूर्तियुक्त बनाता है।

ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि – ध्यान के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ध्यान के द्वारा सूक्ष्म मन के अनुभवों को स्पष्ट किया जाता है। जैसे-जैसे हम अन्तर्मुखी होंगे, अधिक गहराई में जायेंगे, वैसे-वैसे अपने भीतर सूक्ष्म अनुभवों को जानने में सक्षम होते जायेंगे। यह आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है। आत्म-साक्षात्कार का तात्पर्य यहाँ पर स्वयं के अनुसन्धान से है। ध्यान अपने आपको पहचानने की प्रक्रिया है। स्वयं का साक्षात्कार होना, स्वयं को जानना ध्यान के द्वारा ही सम्भव है।

समाधिना निर्लिप्तं च – समाधि द्वारा निर्लिप्त अवस्था की प्राप्ति होती है। हमारा पूरा जीवन भोग में लिप्त रहता है; कर्मों, सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं में लिप्त रहता है। इसी कारण हमारी दृष्टि संकीर्ण एवं सीमित रहती है। किन्तु समाधि की स्थिति जब प्राप्त होती है और हम चेतना के सभी आयामों एवं अवस्थाओं को जान-पहचान लेते हैं, तब फिर अन्तिम अवस्था होती है तुरीया की, अन्तर्जागृति की, जिसमें हम अपने कर्मों और वासनओं में लिप्त नहीं रहते, उनके अधीन नहीं रहते। हम भोगों से निर्लिप्त रहते हैं, उनको भी पार कर जाते हैं। समाधि द्वारा इस निर्लिप्त अवस्था और फिर मुक्ति की प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online   **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र 9

शांतता और नियमितता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 72, ISBN: 978-93-48677-25-9

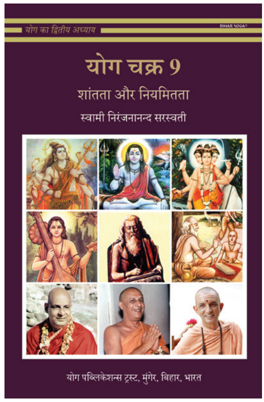

नया प्रकाशन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने गंगा दर्शन विश्व योगपीठ में 13 से 21 जुलाई 2018 तक आयोजित अध्यात्म संस्कार साधना के दौरान सत्संगों की एक शृंखला प्रस्तुत की, जिसमें शांतता और नियमितता के विषय को आगे बढ़ाया गया। उन्होंने व्यक्तिगत कल्याण और सामूहिक सद्भाव के लिए हमारे दैनिक जीवन में इन यम-नियमों के महत्त्व को बड़े प्रेरक और प्रबोधक ढंग से उजागर किया।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2026

योगपीठ कार्यक्रम

फरवरी 14	*बाल योग दिवस*
मई 6	*मुंगेर आगमन*
नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव*
फरवरी 1–अप्रैल 30	*संन्यास अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*
फरवरी 21–27	*पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)*
मार्च 6–12	*प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)*
अप्रैल 4–10	*धारणा प्रशिक्षण (अंग्रेजी)*
सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

मार्च–अप्रैल	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)*
अप्रैल 1–30	*पारम्परिक योग प्रशिक्षण (अंग्रेजी)*
नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें